होते हुए भी लेखक को सन्देह बना रहा कि शायद उन के नाटक नाट्य से सम्बन्ध न रखते हों हम यह दोष लेखक का नहीं मानते यह तो पश्चिमी विद्यानुराग (एम० ए०) का है। जिस पर इस देवी का अनुग्रह हो जाता है वह पिता-पितामहों को 'सर्वेंट' तक कह दिया करता है। मगर लेखक जी यूनान का प्रभाव नहीं मानते केवल अंग्रेजी से विशेष प्रेम है। रूपक के दश भेदों में यद्यपि 'अंक' वर्तमान है तथापि "वर्तमान हिन्दी एकाङ्की नाटकों ने पश्चिमी एकाङ्की नाटकों से ही प्रेरणा ग्रहण की" कहे बिना लेखक से नहीं रहा गया। पश्चिम को महत्व देना शायद लेखक अपना परम कर्तव्य समझते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण में भी धूल झोंके बिना लेखक, को चैन नहीं। नाटकों के भीतरी और बाहरी संघर्ष को भी लेखक भारतीय नहीं मानते वे दृढ़ विश्वास के साथ क्रीत वकील की भाँति कहते हैं—"यह पश्चिम की देन तो है ही"। यहां भारत की अन्तरात्मा भी धन्यवाद देने को कमर बांध लेगी। क्या उत्तर राम चरित में संघर्ष नहीं है? या वह भी अंग्रेजी नकल है? नहीं तो 'दिये लोभ चश्मा चखनि लघु पनि बढ़ी लखाय' वाली अपनी भावना से क्यों साहित्य गन्दा किया जा रहा है। पश्चिमी जगत से वेतन पाने पर भी किसी व्यक्ति को अपनी संस्कृति नहीं बेच देनी चाहिए। कोई मनुष्य आत्मपक्ष ग्रहण न करे तो सत्य का अपन्हव भी क्यों करे?

वर्तमान भारतीय परिस्थित के अनुसार जो नाटकों में नवीनता आती जा रही है उस पर अंग्रेजी नाम की मुहर लगाए बिना लेखक का अजीर्ण दूर नहीं होता। नई धारा पर इब्सनिज्म का प्रभाव बतला पृ० १२६ पर तो एक नया ही गुल खिलाया है—"यद्यपि एकाङ्की नाटक यहाँ पर विदेशी हवा के साथ आए हैं तथापि इस तरह के नाटक प्राचीन रूपकों में भी मिलते हैं" यहां पदलेहनवृत्ति (पैर चाटना) की पराकाष्ठा हो गई। वाह री एम० ए०! तुझे इस युक्ति पर क्या पुरस्कार दें! इतना अन्ध पक्षपात गिरे से गिरा मनुष्य भी नहीं कर सकता। जब ऐसे नाटक

प्राचीन रूपकों में भी मिलते हैं तो वे विदेशी हवा के साथ कैसे आए ? या तो यह कहो कि भारत मे 'छम' नाम की वस्तु हा नहीं थी ? या थी तो वाहर से आधी मे उड़ कर आई। इस वाक्य मे ही विरोध है। "यद्यपि एकाङ्की नाटक पर विदेशी हवा के साथ आए है" यहां लेखक महोदय ने 'यद्य' ऐसे ढग से लिखा है जैसे यह वात स्वतः सिद्ध हो। इस से अच्छा तो प्राचीन रूपकों मे 'अक' न होना ही मान लिया जाता तो ठीक था। आज तक के जितने नाटक कार है वे लेखक का पश्चिम का अन्धानुकरण करते दीख पडते है। इसी लिए वे यह भी कहते है कि अव ऐसे नाटकारों की जरूरत है जो नया मार्ग निकालें। लेखक को अपना अन्धानुकरण नहीं दीखता। यह उक्ति तो ऐसी ही है जैसे भैस अपने रग को न देख कर श्वेत धेनु को काली समझ बिदकने लगे। हमारे विचार से कोई भी भारतीय नाटककार अन्धानुकारी नहीं यदि है तो एक। वह भी नाटक कार नहीं नाट्य-लक्षण ग्रन्थकार है, जो कि ी भी नाटक कार से सन्तुष्ट नहीं। लेखक स्वयं अग्रेजी ढग का रग मच कलकत्तेमें १७५७ के लगभग स्थापित हुआ मानते हैं मगर उसका प्रभाव न मालूम उस के अस्तित्व से पहले हो कैसे भारतीय नाटकों पर पड़ गया। अग्रेजी नमक खा कर शायद ऐसे ही विरोधी वचन उगलना स्वाभाविक ही होगा! राय महोदय को शेक्सपियर के आदर्शों पर चलता वतलाया गया है। सारांश वह है लेखक महोदय इगलिस्तान के अन्धे हुए प्रतीत होते हैं जिन्हें भारत मे भी वही दीख पड़ता है। प्रान्तीय नाटक भी इब्सन आदर्श के प्रभाव से खाली नहीं वतलाए। कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि यह पुस्तक किसी भारतीय की लिखी न हो। अस्तु, जो कुछ भी हो इन वातों के अतिरिक्त पुस्तक मे विद्यार्थियों के लिए काफी सामग्री है जिसके अध्यन से परीक्षोत्तीर्ण स्वार्थ सविद्यार्थियं को वञ्चित नहीं रहना पडता!

तुम्हारे हाथ वाली पुस्तक उक्त पुस्तक का ही आधार ले कर लिखी गई है। इस के पहले सोपान में सारी पुस्तक के शब्दार्थ दिये। तीसरे में मूल पुस्तक में आए हुए पद्यों का अर्थ। मगर ये अनावश्यक सी बातें हैं। जो लोग मूल पुस्तक साथ में रख कर पढ़ना चाहें वे इन सोपानों को अवश्य देख लें अन्यथा परीक्षा में पूछी जाने वाली बातें तो दूसरे सोपान में हैं जो प्रश्नोत्तर रूप में निबन्धित है। तीसरे सोपान में लेखक का परिचय और गद्यांशों की व्याख्या अवश्य देख लेनी चाहिये।

अन्य कुञ्जियों की भांति देख पुस्तक मे केवल शब्दार्थ देकर लेखों का सार नहीं लिखा है। इसे परीक्षार्थियों का हित दृष्टि में रख कर तैयार किया गया है। जिन गरीब विद्यार्थियों के पास मूल पुस्तक नहीं है वे केवल इस से सफल हो सकते हैं। दूसरी कुञ्जियों मे यह बात नहीं। वहां तो केवल सार है जिसके अध्ययन से छात्रों के पास केवल सार का सार बचेगा। मूल पुस्तक की कोई बात शेष नहीं छोड़ी, सब प्रश्नोत्तर रीति से स्पष्ट कर दी है। हां हेर फेर से दूसरे प्रश्न बन सकते हैं मगर उनके उत्तर भी इसी पुस्तक में मिलेंगे।

हमारा विश्वास है कि इस कुञ्जी को पढ़कर कण्ठस्थ कर लेने के पश्चात् स्वभावत: विद्यार्थी मे इतनी योग्यता हो जाएगी कि पुस्तक के क्या यदि बाहर के भी नाट्य शास्त्र सम्बन्धी प्रश्न किए जाय तो उनका वह ठीक उत्तर दे सकेगा। यह कुञ्जी ज्ञान विधायिनी है, अल्पज्ञ बनाने वाली नहीं। कुञ्जियों के विरोधी लोग इस नवीन शैली से अवश्य मात्सर्य त्याग देंगे। स्वभाव सुलभ ईर्ष्यालु लोग इसे हाथ न लगायें। उन के काम की यह वस्तु नहीं, जिज्ञासुओं के लिए ही इस की सृष्टि हुई है।

जो विद्यार्थी इसे अपनाएगा हमारी मंगल कामना उस के साथ रहेगी, परीक्षा का मार्ग उसके लिए सुगम रहेगा—

माडल बस्ती
ता० १-१-४३

शास्त्री जयनारायण "गौतम"

श्री

हिन्दी नाट्य-विमर्श-प्रदीप

प्रथम सोपान

—.—

(शब्दार्थ तथा लेखों की सारगभिणी आलोचना)

काव्य में नाटक का स्थान :—

१-६ पृ० न्यूनाधिक = कम ज्यादा । संकुचित = तंग । उद्वेलित = ठाठे मारता हुआ । उत्सुक = उत्कण्ठा वाला, किसी वस्तु की प्राप्ति के विलम्ब को न सह सकने वाला । स्रोत = झरना, प्रवाह । जड़चेतनात्मक = चराचर वाला । सम्पर्क = संगति तल्लीन = ध्यान मग्न । व्यक्त =स्पष्ट । अभिव्यक्ति=प्रकट होना । अनुरूप = रूप के अनुसार । सुरम्य = सुन्दर । प्रवाह = बहाव उत्स-भीतरी प्रदेश । वाक्यं रसात्मकं काव्यम् = रस वाला वाक्य काव्य कहलाता है । प्लावित = तैरा हुआ । प्रेरणा = उकसावा । अन्तर्मुखी = भीतर की ओर रुख वाला । बहिर्मुखी = बाहर की ओर रुख वाला । प्रतिनिधि = उपमेयोपमान । मुखरित = गूंजी हुई । निरपेक्ष लापरवा । द्रष्टा = देखने वाला । परिपक्व = पका हुआ । संस्कृति = सभ्यता । दृष्टिकोण = लक्ष्य । आवरण = पर्दा, गिलाफ़ । वेशभूषा = पहरावा । अभिनय = अनुकरण । अनुकृति = नकल =सप्राण प्राणों सहित । सांकेतिक = इशारे वाली । वरन = बल्कि । प्रतिलिप = नक़ल । प्रभावोत्पादन = असर पैदा करना । पुनरावृत्ति = फिर दोहराना । अनुकार्य = अनुकरण किये

जाने योग्य पारिभाषिक = किसी एक शास्त्र में प्रसिद्ध । पर्य्याय-वाची = वदले के अर्थ को कहने वाला । स्पष्टीकरण = खुलासा । अनुपयुक्त =अनावश्यक । अमूर्त =आकृति रहित वस्तु । भाव-भङ्गी =नज़ाकत, चेष्टा । बुद्धिगम्य =बुद्धि मे घुस सकने योग्य । क्षमता =सामर्थ्य ।

लेखक ने इस लेख मे काव्य और कला की उत्पत्ति का प्रकार, अभिव्यक्ति और काव्य का लक्षण, विषय के विचार से काव्य के भेद—(आपवीती और जगबीती का विवेचन), महा-काव्य, उपन्यास और नाटक में भेद का स्पष्टीकरण किया है । श्रव्य और दृश्य का विश्लेषण करते हुए रूपक की व्युत्पत्ति की है । नाटक की अधिक प्रसिद्धि की समीक्षा कर नाटक के महत्व पर पूर्ण प्रकाश डाला है "काव्येषु नाटक रम्यम्" की सार्थकता पर विचार कर काव्य मे नाटक का स्थान निर्धरित किया है ।

नाटकों का उदयः—

१० पृ० अंकित =जड़ा हुआ । अनुकरण शीलता =नकल करने का स्वभाव । कल्पना = मन घड़न्त । आकार = शकल । समवयस्क = एक जैसी आयु वाले ।

११ पृ० गार्हस्थ्य =गृहस्थ सम्बन्धी । विस्तारोन्मुखी = फैलने की ओर मुख वाली । तादात्म्य = समानता ।

१२ पृ० विभूषित = सजा हुआ ।

१३ पृ० कृत्य = कार्य । लौकिक =लोक के । सामाजिक = समाज से सम्बन्ध रखने वाले । जागरण =जागना ।

१४ पृ० अनुकरणात्मक = नकल वाला । निषेध =मना । द्योतक =प्रकाशक ।

१५ पृ० पार्थक्य = भिन्नता । नितान्त =बिल्कुल । अतिशायिता =अधिकता । निर्णायक = फैसला करने वाली । अवलम्बित = सहारे ।

१६ पृ० सिद्धान्त = उसूल । निराकरण = दूर करना-प्रतिकार। निराधार = विना सहारे की, बे सिर पैर की। तारतम्य = सिलसिला।

१७ पृ० पर्याप्त = काफी।

१८ पृ० निरर्थक = फजूल। प्राचीन = बहुत पुरानी।

१९ पृ० परिषद् = सभा। निष्कर्ष = सार। अवहेलना = अनादर। निर्धारित = निश्चित।

२० पृ० प्रचुर = बहुत। निरूपण = प्रतिपादन। प्रतिभा = सस्कार सिद्ध बुद्धि।

२३ पृ० प्रेक्षागृह = देखने का घर।

२४ पृ० निर्मित = बनी हुई। सम्बद्ध = जुड़ा हुआ। विवेचन = छानबी।

२५ पृ० यातायात = आमदोरफ्त (आना जाना)। आभासमात्र = झलक भर। देशज = देश मे उत्पन्न हुआ।

२६ पृ० विभाजन = बटवारा। उपोद्घात = प्रस्तावना। उपसहार = समाप्ति। सृजन रचना।

२८ पृ० भावापहरण = भाव चुराना।

इस लेख मे अनुकरण को नाटक की मूल भूत प्रवृत्ति वतलाया है। नाटक के मूल मे काम करने वाली चार मनोवृत्तियां दिखलाई है। नाटक की सृष्टि का आधार क्या है ? सब से पहले नाटक का उदय कहां हुआ ? इन प्रश्नों पर विशद विवेचन किया है। भिन्न २ विद्वानों के मतों को दिखलाते हुए भारत ही मे नाटकों का प्रथम प्रादुर्भाव वतलाया है। नृत्त और नृत्य तथा नाट्य का अन्तर दिखला कर कठपुतलियां के नाच की कल्पना में सत्यता का आरोप किया है; कठपुतली का रोचक इतिहास भी लिखा है। पहले नाटक धार्मिक उत्सवों पर हुआ करते, इस उक्ति को सिद्ध किया है। भारतीय नाट्य के विकास का इतिहास बड़े सुन्दर ढग से लिखा है। भारत में प्रेक्षागृह और नटियों के सहयोग की

कथा लिखी है। जिन महाशयों ने भारतीय नाट्य कला पर यूनानी प्रभाव पड़ा बतलाया है, उसका युक्ति युक्त और सप्रमाण खण्डन किया है।

नाटक के तत्व :—

२६ पृ० वरन=बल्कि। रस-सचार=रस का गुज़र।

३० पृ० आङ्गिक=अङ्गों से सम्बन्ध रखने वाला। कायिक=शरीर से सम्बन्ध रखने वाला। वाचिक=वाणी से सम्बन्ध रखने वाला। आहार्थ=वेशभूषा में सम्बन्ध रखने वाला। सात्विक=मनोभावों से सम्बन्ध रखने वाला। सम्बद्ध=जुड़ा हुआ। समीक्षा पद्धति=छानबीन का मार्ग। समन्वय=सम्बन्ध। समाविष्ट=घुसा हुआ। समीक्षक=अलोचक। आन्तरिक=भीतरी।

३१ पृ० अनुमापक=अनुमान करने वाला।

३२ पृ० परम्परागत=पीढ़ियों से चली आती हुई। निर्दिष्ट=दिखलाया हुआ। वैपभ्य=विपमता।

३४ पृ० सम्भावना=अनिश्चित दो वस्तुओं मे से एक की ओर अधिक झुकाव। शमन=शान्त।

३५ पृ० ह्रास=क्षीण होना। सांकेतिक=इशारे वाला। अनुमेय=अनुमान करने योग्य। अभीष्ट=मन चाहा।

३८ पृ० वर्जित=मना।

४२ पृ० अभिजात=उच्च वंशज। उद्घाटन=भांडा फोड़ना

४३ पृ० वाञ्छनीय=चाहने योग्य।

४४ पृ० सुखान्वेपी=सुख खोजने वाला। कलाविद=कल जानने वाला। परायण=तत्पर।

४५ पृ० प्रतिद्वन्दी=मुकाबले का।

५० पृ० कृत्रिम=बनावटी।

५४ पृ० जटिल = उलझा हुआ। प्रतिद्वन्द्व-शील = झगड़ालू।

५५ पृ० मात्सर्य = डाह। दाहकता = जलन। स्निग्धता = प्रेमभाव। अभिवृद्धि = बढ़ना। जिज्ञासा वृत्ति = जानने की इच्छा का व्यापार।

५६ पृ० तीव्रता = तेजी। सुखानु भूति = सुख का अनुभव। मग्न = डूबा हुआ।

५७ पृ० वर्ज्य = त्याज्य। कृत्रिम = बनावटी।

५८ पृ० आघात = ठेस। पर्याप्त = काफी।

६० पृ० मूक = गूंगा। वयस्य = सखा।

६१ पृ० अवन्ती = उज्जयनी। प्रभृति = आदि (वगैरा)।

६३ पृ० दाक्षिण्य = चतुरता, अनुकूलता। अन्तर्गत = भीतर।

६६ पृ० स्पृहा = चाह। दुष्प्राप्य = कठिनता से प्राप्त किया जा सकने वाला।

६७ पृ० अभिनेयत्व = नकल किया जा सकना क्लिष्ट = कठिन

६६ पृ० जनरव = लोगों का शब्द।

७० पृ० अनुपयुक्त = अनावश्यक, अनुचित। व्यवसायिक = पेशे का। वातावरण = वायु मण्डल। पद्धति = मार्ग, शैली। वैयक्तिक = एक व्यक्ति-सम्बन्धी।

७१ पृ० दुरूह = तर्क से भी कठिन। उद्धृत = उठाया हुआ।

७२ पृ० वाचनालय = लायब्रेरी। रुचते हैं = अच्छे लगते हैं। तरुण = जवान। परम्परा = रिवाज, सिलसिला। लुप्त-प्राय = प्राय: गुप्त। अर्चना = पूजा।

७३ पृ० क्षणिक = क्षण भर ठहरने वाली।

७४ पृ० समिति = सभा किम्वदन्ती = अफवाह। निर्भर = मनहसर।

७५ पृ० अधिवेशन = बैठक।

७७ पृ० बोधगम्य = समझी जा सकने वाली।

७८ पृ० हस्तामलक = हाथ में आंवला।

इस अध्याय में नाटकीय आमूलचूक विशेपताओं का प्रकाशन किया है। नाटक का उद्देश्य और उपन्यास से सामञ्जस्य दिखलाया है। वस्तु की व्याख्या भेदों सहित की गई है। कार्य के व्यापार की दृष्टि से पांच अवस्थाएं लिखी है। कथा वस्तु को कार्य की ओर ले जाने वाले पांच अङ्गों का भी निदर्शन किया है। नाटकीय सन्धियों की परिभाषिक व्याख्या की है। रंगमच पर न दिखाई जाने वाली विशिष्ट बातें और पांच अर्थोपिचक भी लिखे है। श्राव्य अश्राव्य और नियत श्राव्य का स्पष्टी करण कि" है। नायक की व्युत्पत्ति और लक्षण लिख उसके चार भेदों व खुलासा किया है प्रतिनायक तथा विदूषक के लक्षण लिखे है।

रस, भाव, स्थायी भाव, विभाव, सचारी भाव, अनुभा का स्पष्ट और विस्तृत विवेचन किया है। अनुभाव के भेदों व दिग्दर्शन करा रस को आनन्द स्वरूपना का हेतु लिखा है। त नन्तर भारत मे दुःखान्त नाटको के अभाव का कारण लिख चा प्रकार के अभिनयों को खोल कर समझाया गया है। इसके पश्चा चार प्रकार की वृत्तियां सलक्षण लिखी है।

रूपक के दश भेद और उपरूपक के १८ भेदो के सोदाहर लक्षण लिखे हैं। प्राचीन रगमचो के भेद और आकार दिख कर हिन्दी रगमेच की स्थिति पर विस्तृत प्रकाश डाल उसव असफलता के हेतु भी लिखे हैं। तत्पश्चात् एक नाटक समि स्थापित करने की सम्मति दी है जिस मे रविठाकुर, शिशु भादु और उदयशङ्कर का सहयोग मॉगा है फिर अध्याय की समाप्ति रगमच से सिनेमा की विशेपताओं का व्योरा दिया है।

नाट्यसाहित्य :—

८१ पृ० प्रथा = रिवाज।

८३ पृ० पाश्चात्य = पश्चिम के। प्रसन्नताथ = प्रसन्नता के लि

८४ पृ० आतङ्क = रौब, दबदबा । गाम्भीर्य-पूर्ण = गम्भीरता-भरा। गाम्भीर्य-वर्द्धक=गम्भीरता बढ़ाने वाला ।

८५ पृ० वैचित्र्य = अनेक विभिन्नता । अश्लीलता= लुच्चापन, सांस्कृतिक=सभ्यता सम्बन्धी ।

८६ पृ० महत्व = बड़प्पन। अमूर्त = मूर्ति रहित । पुनरुत्थान= फिर उठना। अभिजात-वर्ग = कुलीन-समाज। अवहेलना= टालना, तिरस्कार । उपास्य=उपासना के योग्य, ग्राह्य ।

८७ पृ० प्रासङ्गिक=प्रकरण की ।

८८ पृ० उच्छृङ्खलता=बन्धन रहितपन ।

८९ पृ० स्थलैक्य = स्थान की एकता । वर्णित = वर्णन की हुई । वर्षदूर्ध्वं न तु कदाचित = वर्ष से ऊचा कभी नहीं ।

९० पृ० नयनाभिराम = नेत्रों के लिए सुन्दर । व्यापक = फैला हुआ ।

९१ पृ० अभिनय = नया । पार्थक्य = पृथकता । पेचीदा = जटिल । शाश्वत = नित्य ।

९२ पृ० अवतरित = उतरा हुआ । अतीत = गुजरा हुआ । सीमित = सीमा मे । उपेक्षणीय=त्याज्य ।

९३ पृ० चिरन्तन = पुराना । प्रतीक = चिन्ह । आगन्तुक = आने वाले ।

९४ पृ० अन्धानुकरण = बिना सोचे समझे नकल करना । प्रचुर = बहुत ।

९५ पृ० हर्षोल्लास = आनद । निषेधात्मक= निषेध वाला । निहित=रखी हुई ।

९६ पृ० प्रख्यात = प्रसिद्ध। संबद्ध = जुड़ा हुआ। श्रेय=भलाई।

९७ पृ० अविच्छिन्न = न टूटी हुई। भाषन्तर = दूसरी भाषा मे अनुवाद ।

९८ पृ० विधिवत =विधी के अनुसार ।

९९ पृ० अक्षुरण = क्षीणता रहित (बनाए रखना) प्रतिभावान = बुद्धिवाला।

१०१ पृ० उपधर्म = हिन्दूधर्म के भेदान्तर । निर्वासन = निकालना।

१०३ पृ० अनूदित = अनुवाद किया हुआ । राज्य-च्युत = राज्य-भ्रष्ट।

१०४ पृ० कलुष = कालिमा, पाप । न्याय-विड़म्बना = न्याय की अवहेलना (तिरस्कार)।

१०६ पृ० उद्घाटन = प्रकाशन । श्रेयस्कर = कल्याण-कारी। क्षम्य = क्षमा के योग्य। उद्योगशील = उद्योगवाला।

१०७ पृ० इन्दु = चन्द्र।

११० पृ० क्षीण = जर्जरित ।

११३ पृ० संघर्ष = रगड़, खैंचातानी, कश्मकश । नवेन्दु = नया चांद। इतिवृत्ति = बस इतना, किस्सा कथा वस्तु। अन्तर्वेदना = भीतरी पीड़ा ।

११४ पृ० साङ्केतिकता = सङ्केतपन। चित्रित = चित्र मे खिंचा हुँआ। रमणी = स्त्री आत्मोत्सर्ग = आत्म त्याग ।

११५ पृ० नियतिवाद = भाग्य २ चिल्लाना । अवहेलनीय = अवहेलना के योग्य।

११६ पृ० कुंठित = कूंटा, तीक्षणता रहित । प्रदर्शित = दिखाया हुँआ।

११७ पृ० हेय तुच्छ, त्याज्य। आवेग = जोश घबराहट, तेजी। मर्म पीड़ित = जिस के मर्म मे पीड़ा पहुंच चुकी हो। कंकाल = हड्डियों का ढांचा।

११८ पृ० परिणित = परिणाम में आया हुआ, बदला हुआ। उपलब्ध = प्राप्त ।

११९ पृ० अनुसन्धान = खोज । जर्जरित = खोखला । उद्दीप्त = चमचमाती।

१२० पृ० अमिताभ = बुद्ध भगवान। अवाञ्छनीयता = अनिष्टता। काण्ड = घटना।

१२१ पृ० उद्यापन = व्रतत्याग (उजमना-हिन्दी) पर्यवसान = समाप्ति।

१२२ पृ० भावात्मक = भाव वाले। अवतारण = उतारना। कलुषित = कलंकित। अध्ययनाक्रान्त = अध्ययन से व्याप्त। संस्कृत-मना = संस्कृत मन वाली। परिष्कृत = मजी हुई। सोद्देश्य उद्देश्य सहित। अभूत-पूर्व = जो पहले न हुआ हो।

१२३ पृ० एक भाषा-भाषी = एक भाषा बोलने वाले। सरिता =नदी। वक्र = टेढ़ी। पेचेदगी = जटिलता अग्रगामिनी = आगे चलने वाली। दिव्याभा-विभूषित = दिव्य क्रान्ति मे सजा हुआ।

१२४ पृ० आलोक-पूर्ण = प्रकाशित। प्राचुर्य = अधिकता।

१२५ पृ० नितान्त = बिल्कुल। मर्यादित = मर्यादा में। आंका = देखा। रूढ़ि = ढर्रा। दलित-वर्ग = कुचला हुआ समाज। धारणा = विचार। कार्यव्यग्रता = काममों में जल्द बाजी।

१२६ पृ० सान्त = अन्त सहित। प्रद्विन्दिता = मुकाबला।

१२७ पृ० कौतुहल = चाव। मनोरञ्जन = दिल बहलावा। अनुपात = निस्बत (·)।

१२८ पृ० शैथिल्य = शिथिलता।

१२६ पृ० शृखला = जंजीर। पदार्पण = कदम बढ़ाना।

१३० पृ० पर्यास = पराश्रम-प्रलय। विकारपोन्मुख = उन्नति की ओर स्पृहणीय = चाहने योग्य। अभीप्सित = इच्छित। प्रेयसी = प्रियतमा। ऐक्य = एकता। समस्या = उलझन।

१३२ पृ० नैराश्य = निराशता। स्पर्धा = होड़। शाब्दिक = शब्द की।

१३४ पृ० लिप्सा लेने की चाह। दम्भ = पाखण्ड। महत्वाकांक्षा = बड़प्पन की चाह। मनोरम = सुन्दर। वात्सल्य स्नेह।

१३५ पृ० उपक्रम = भूमिका।

१३६ पृ० पारिवारिक = परिवार सम्बन्धी । सौजन्य = सज्जनता ।

१३९ पृ० अप्रमाणिक = प्रमाण-रहित ।

१४० पृ० हृदय-ग्राही = दिल को पकने वाला। प्रभृति=आदि, वगैरा । संकृति = सभ्यता ।

१४१ पृ० भावानुसारिणी = भाव के पीछे चलने वाली । प्रोत्साहन = प्रेरणा, बढ़ावा ।

१४३ पृ० बाह्याडम्बर = बाहरी दिखावा ।

१४४ पृ० युगान्तर = अन्य युग । भावुकता = भावों को पहचानना । उन्मादावस्ता = पागलपन की हालत ।

१४५ पृ० सर्वतो मुखी = चारों ओर मुँह वाली । मृगया = शिकार । आभा = कान्ति । दिव्य = स्वर्गिक, चमकीली ।

१४६ पृ० आयोजन = जुटाव । प्रतिक्रिया = रोक ।

गुलाबराय जी ने इस चौथे अध्याय मे नाटकीय घुघुक्कड़ पकाया है। प्रथम तो कालिदास को आगे रख कर सस्कृत के नाटकों का समय निश्चित किया है । भाप, अश्वघोप, शूद्रक, विशाखादत्त, श्री हर्ष और भवभूति, भट्ट नारायण, मुरारि तथा राज शेखर, दामोदर, कृष्ण मिश्र, त्नेमेश्वर आदि संस्कृत नाटक लेखकों की कृतियों का परिचय दिया है। और उन का हिन्दी मे अनूदित होना लिखा है।

पश्चिमी देशों के नाटकों का मूलस्थान रोम और यूनान का बतलाया है। वहां के नाटको के उदय का हेतु धार्मिक नृत्य और गीत को माना है। इसके बाद हास्य नाटको की उत्पत्ति और विकास लिखा हैं। यह सब कुछ रोम मे आकर सारे पश्चिम मे फैला। प्रसंगवश संकलन-त्रय का प्रकाशन और शेक्सपीयर के बाद नाटकीय आदर्शों मे प्रचुर घात-प्रतिघात पर विशिष्ट टिप्पणी

लिखी है। इसके बाद इब्सन के पश्चात अन्य प्रवृत्तियों पर विचार कर एकाङ्की-नाटकों पर विहङ्गम दृष्टि डाली है।

"हिन्दी साहित्य का जन्म एक हजार वर्ष पूर्व होते हुए भी उन्नीसवीं सदी से पहले हिन्दी मे नाटको का अभाव ही सा था।" इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इस के पश्चात हरिश्चन्द्र से पहले के नाटकों का विवरण दिया है फिर भारतेन्दु जी के मौलिक और अनुवादित नाटकों की विवेचना की है। कुछ मूढ लोगों ने भारतेन्दु जी पर कुछ उल्टे सीधे जो आक्षेप किये हैं। उनका लेखक ने वाक चातुरी मे समाधान किया है और तत्कालीन नाटक कार का भी नाटकीय परिचय दिया है।

हरिश्चन्द्र और नवीन युग के बीच के काल को 'बीच की शृखला' सज्ञा देकर उस मे द्विजेन्द्रलाल और रवि बाबू के अनुवादों का प्राधान्य बतलाया। तत्कालीन कुछ मौलिक नाटकों का भी नाम ग्रहण किया। श्री सत्यनारायण जैसे लेखकों के सस्कृत अनुवादों की प्रशसा करने के बाद नवीन युग के नेता प्रसाद जी की विस्तृत समालोचना की है, और उनकी कला का परिचय दे नाटकों के भाव गाम्भीर्य पर तीव्र प्रकाश डाला है। फिर साहित्य की गति सरिता की भाति वक्र बतला कर नवीन तम प्रवृत्तियों के विषय मे मस्तिष्क से काफी परामर्श किया है।

यहां से आगे लेखक महोदय विदेश और विदेशी उन्नति का पद लेहन करते है—एकाङ्की नाटकों को विदेशी हवा के झोंके से आया बतलाते है। एकाङ्की नाटक और नाटक का भेद प्रदर्शन कर एकाङ्की नाटक लेखकों का सक्षिप्त ब्योरा दे, कुछ प्रमुख नाटकारों के परिचय की ओर अग्रसर हुए और पं० माखन-लाल चतुर्वेदी, मिश्रबन्धु, प० बद्रीनाथ भट्ट, मैथिलीशरण गुप्त,

रामनरेश :त्रिपाठी, पं० गोविन्दवल्लभ पन्त, वेचन शर्मा उग्र, मंशी प्रेमचन्द्र जी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, प० उदयशंकर भट्ट, श्री सुदर्शन जी श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, श्री हरिकृष्ण प्रेमी, चतुरसेन शास्त्री, श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, श्री सत्येन्द्र जी, श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव, डा० लक्ष्मणस्वरूप, डाक्टर मङ्गलदेव की वन्शावली पढ़ डाली। उक्त सभी को लकीर के फकीर बतला, किये कराये पर पानी फेर अनन्धानुकारी नाटक कारों की बान्ट का (जरूरत) ढोल पीटा।

प्रान्तीय नाटकों में बंगला के नाटकों की प्रमुखता का माइकेल मदूसदन को हेतु बतलाया और उसके सामाजिक नाटकों की जो उन्नति हुई, यथावत् विश्लेपण किया। बगाली नाटकों मे युगान्तर उपस्थित करने वाले श्री द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों पर बोधाविधायिनी टिप्पणी लिखी। फिर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की सर्वतोमुखी प्रतिभा की प्रशसा कर मराठी भाषा के कंकाल में भी रस संचार किया। फिर अध्याय की समाप्ति मे रंण छोड़ भाई उदयराम के नेतृत्व में गुजराती नाट्य-कला का भरण पोषण बतला के० एम० मुन्शी को प्रधानता दी है।

कुछ नाटकों का आलोचनात्मक परिचय :—

१४८ पृ० भारतीय लोकसमीक्षा = भारत के लोगों की आलोचना। पुष्टि = समर्थ।

१४६ पृ० परिणति = परिणाम। म्लान = मैले। आत्मोत्सर्ग= आत्म त्यागा। चक्रवर्ती = सम्राट। गुम्फित = गुन्था हुआ। अनिन्द्य = निन्दा न करने योग्य। सहोदरा = सगी बहन।

१५० पृ० कृसानु = आग। क्षत = हानि। रगरेली = क्रीड़ा, विहार। पखार = धोकर। वृन्द = झुण्ड। प्रत्यञ्चा = डोरी।

१५१ पृ० आतिथ्य = महमानी। वन्य = वन के। अभेद =

भेद रहित। साम्य = समानता। सद्य. सौरभ = ताजा सुगन्धी। समचित = युक्त। नैतिकता = नीतिज्ञता। प्रमाण = सबूत।

१५२ पृ० प्रस्फुटित = फूटी हुई, खिली हुई। पार्थिव = पृथ्वी का। छोर = किनारा। सोपान = सीढी। उष्णता = गर्मी। संयम = इन्द्रियों को वश मे रखना।

१५३ पृ० दीक्षा = गुरुमन्त्र। स्थायित्व = स्थिरता। कूल = नदी। आतप = धूप। दुहिता = पुत्री। प्रतिस्पन्दित = झन-झनाया हुआ।

१५४ पृ० महिषी = पटरानी।

१५५ पृ० विदग्धता-पूर्ण = चतुरता से भरा। प्रस्थान = कूच। नीवार = वन्य धान। पर्ण-कुटी = झौपड़ी।

१५६ पृ० गेही = गृहस्थी। शापजन्य = शाप से उत्पन्न।

१५७ पृ० उपालम्भ = उलाहना। मोहक = मोहने वाला। आसन्न प्रसवा = जिसका प्रसव (ब्याना) निकट है। अभि-व्यक्ति = प्रकटता।

१६० पृ० बतीसी = बत्तीसों दांत। कनिया = गोद। सुवनन पुत्रों। अभिज्ञान = पहचान। दम्पती = स्त्री पुरुष का जोडा।

१६१ पृ० नील लोहित = शिव जी।

१६२ पृ० उत्तर राम चरिते भव भूतिर्विशिष्यते = उत्तर राम चरित नाटक मे भवभूति कवि विशिष्ट है। रश्मियां = किरणें। तमो-मय = अन्धकार वाले। शशि = चांद। निर्वासित = निकाली हुई। आसन्न प्रसवा = बच्चा उत्पन्न करने केनिकट।

१६४ पृ० सद्वनिताओं = अच्छी स्त्रियों। अस्तु = खैर, होवे। प्रजावत्सलता = प्रजा प्रेम। तारतम्य = कम, सिलसिला। प्रमाद गफलत। तज्जनित=उस से पैदा हुआ। प्रचुर=बहुत। वरु=चाहे।

१६६ पृ० पावन = पवित्र। अजोग = अयोग्य।

१६७ पृ० प्रजानुरंजन = प्रजा को प्रसन्न करना। वेदना = पीड़ा। उद्वेग = घबराहट। आर्य पुत्र = पति।

१६६ पृ० आपाद मस्तक = पैर से मस्तक तक।

१७० पृ० विश्वास घात= धोखा। असह्य = न सही जा सकने वाली।

१७१ पृ० मर्मभेदक = मर्म को फोड़ने वाली। क्षोभ = रंज। आदर्श = नमूना। उपालम्भ = उलाहना। वन्दना = प्रणाम।

१७३ पृ० सहशिक्षा = साथ पढ़ना। प्रखर = तीक्ष्ण। शम्बूक एक शूद्र जो तपस्या करने वन में गया हुआ था। मृदु = कोमल। प्रसून = फूल। सीता निर्वासन-जन्य =सीता के निकालने से उत्पन्न हुआ। मंजुल =सुन्दर।

१७४ पृ० उलूक= उल्लू। दरप = अभिमान। श्री खण्ड= चन्दन। सुरम्य =बहुत सुन्दर । अनायास= बिना परिश्रम के, अचानक। सयम =इन्द्रियों पर नियन्त्रण (काबू) रखना।

१७६ पृ० दसनावलि = दांतों की पक्ति। यज्ञीय – यज्ञ का।

१७८ पृ० अराध्यचरण = पूज्य-पाद।

१७६ पृ० प्रतिकृति= मूर्ति।

१८१ पृ० किकिणी= तागड़ी, मेखला।

१८६ पृ० मन्त्रणा =सलाह।

१८७ पृ० नृशसता =क्रूरता।

१८८ पृ० राज्य विल्पव= राज्य-क्राति।

१९१ पृ० कूटनीति= पालिसी।

१९२ पृ० पराकाष्ठा =सीमा।

१९४ पृ० विशारद =पण्डित । अलंकृत =सजाया हुआ। मनोरंजन =दिल बहलावा।

इस अन्तिम पांचवे अध्याय में शकुन्तला, उत्तर राम चरित्र, चित्राङ्गद नाटकों पर आलोचनात्मक लेख लिखे हैं। बंगाल के द्विजेन्द्रलाल राय और बनारस के जयशकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नामक दो नाटकों की तुलनात्मक विवेचना भी की है।

"काव्यों मे नाटक रम्य है, नाटकों मे भी शकुन्तला सर्वोत्कृष्ट है। शकुन्तला नाटक मे चतुर्थाङ्क सब से अच्छा है।" यह किसी संस्कृत समालोचक की उक्ति है। इस के तथ्या पर गेटे (जर्मनी के महा कवि) की विवेचना का सहारा लेकर लेखक ने एक सारग्राही लेख लिखा है। शकुन्तला शृंगार काव्य नही बल्कि भारत की अलौकिक मर्यादा और सात्विकता का नमूना है। कई वासनान्ध कामुक दुष्यन्त और शकुन्तला के चरित्र से चलती फिरती रमणियों को झांकने की शिक्षा लेते है मगर नही लेखक ने उनकी आंखे खोलने का भरसक प्रयत्न किया है। रस अलकार, सन्धि अवस्थाओं की दृष्टि से परिपूर्ण होने के कारण नाटक को सर्वोत्कृष्ट बतलाया। स्वभाविकता का सहज-निदर्शन होने से चतुर्थाङ्क नाटक मे रम्य कहा है।

"उत्तर राम चरित्र नाटक से भव भूति विशिष्ट रहा है" समालोचनात्मक इस श्लोकार्ध की लेखक ने समीक्षा की है। "शकुन्तला मै तो पुरोहित मानवता का पक्ष लेता है मगर राम के सामने कौन था" कह कर उत्तर राम चरित्र को शकुन्तला से भी बढ़ कर बतलाया है। स्वाभाविकता, कथोपकथन भाव मयी दृष्टि से उत्तर राम चरित की इस लेख मै खूब सराहना की है। हम यहां सुगमता के लिये दोनों की सक्षिप्त कथा लिख देते है।

शकुन्तला—हस्तनापुर के महाराज हरिण का पीछा करते हुए कण्व ऋषि के तपोवन मे पहुचते है। कण्व की पालिता सहज सुकुमारी शकुन्तला कन्या के सखियों सहित दर्शन होते हैं। दोनों एक सरे पर लट्टू हो जाते है और परस्पर परिचित होते हैं। राजा सभी साथी राजधानी को लौट आते है केवल दुष्यन्त ही यज्ञ रक्षा के लिए वहीं ठहर जाते हैं।

एक रोज तपती दोपहरी मे भटकते भटकाते दुष्यन्त वहां चते है जहां मदन ताप से झुलसी हुई शकुन्तला कुज में फूलों सेज पर पड़ी सखियों के सामने अपना रहस्य खोल रही थी।

सखियों ने दोनों को मौका दिया । दुष्यन्त ने अपनी अगूठी शकुन्तला को पहना दी थी । तीन दिन के पश्चात् अन्तःपुर के किसी व्यक्ति के आने की प्रतीक्षा में सूखते २ शकुन्तला को कई मास बीत गए । विचारी को दुर्वासा के शाप का जिसके कारण दुष्यन्त उसे भूल गया था कोई पता न था ।

पुत्री के इस कृत्य से पिता अप्रसन्न नहीं हुए । पति के घर जाने की तैयारियां होने लगी । वन के लता वृक्षों से विदा होकर शारगख और शारद्वत शिष्यों तथा गोतमी के साथ वह पति के दरबार में हाजिर हुई ।

दुष्यन्त ने गन्धर्व-विवाह किये जाने का साफ इनकार कर दिया । शकुन्तला के पास से दुष्यन्त की वह अगूठी सरोवर में बन्दना करते समय गिर पड़ी और किसी प्रकार के चिन्ह को राजा ने प्रमाण न माना । चक्रवती लक्षण धारी पुत्रोत्पत्ति की शर्त पर स्वीकार करने का निर्णय राजा ने मान लिया । पुरोहित के घर ठहरने का प्रबन्ध होता है । ज्योंही वह रोती अपने भाग्य को कोसती जाती है मैनका (उसकी माता) उसे उठा ले जाती है । अब शकुन्तला हेमकूट पर्वत पर सर्वदमन नामक (भरत) पुत्र रत्न उत्पन्न करती है ।

दुष्यन्त को जब वह अंगूठी मिली शकुन्तला की सुध आई । काफी रोते धोते और पछताते हैं । उन्हीं दिनों देवासुर संग्राम छिड़ गया । दुष्यन्त देवेन्द्र की सहायता करने गये । विजित हो कर वापस लौटते समय हेमकूट पर पुत्र और स्त्री से सगम होता है । जब शाप का पता लगता है तो शकुन्तला के मनका बोझ उतर जाता है ।

उत्तर राम चरित—लंका को जीत राम अयोध्या में राज करने लगे हैं । गुरु बशिष्ट और अरुन्धती ने कहला भेजा है कि

प्रजा को प्रसन्न रखने के लिये तन, मन, धन दारातक के त्यागने मे संकोच न करना। चित्रो के देखने से सीता को पुन वन विहार की इच्छा होती है। लक्ष्मण रथ लेने जाते है। पीछे से दुर्मुख दूत धोबी की घटना आकर सुनाता है। राम कर्तव्य विवश होकर सोती हुई सीता को पृथ्वी के भरोसे छोड़ चले जाते है। सीता दुःस्वप्न देख उभक कर उठती है।

अब सीता वाल्मीकि के आश्रम मे है लव कुश दोनों पुत्र का शिक्षण परीक्षण महर्षि वाल्मीकि द्वारा हुआ है।

राम वन मे शूद्रक तपस्वी का ब्राह्मण पुत्र जिलाने के लिए वध करते है। उनके हृदय मे सीता के विरह की आग दहक रही है। उन्हे कही चैन नहीं। जिस दण्डक वन में सीता के साथ भ्रमण किया था, उसके देखने से विरह का दुःख दुगुना भड़क उठा। वहां से वाल्मीकि जी के आश्रम मे जाते हैं। वहां भी उनकी वेकली बढ़ती है। वार २ वेहोश होने पर पुष्पचयन के लिए आई हुई सीता उनको छूकर सचेत करती है। मगर वरदानों के कारण सीता को राम देख नहीं पाते दोनों वहा से चले जाते हैं।

जनक भी वशिष्ट के आश्रम मे आ पहुंचे हैं। पुत्री की दीन दशा को देख २ कर रोते है। अरुन्धती कौशल्या से जनक की भेंट होती है। सीता के पुत्रों को देख कर उनकी स्वभाव सुलभ सुकुमारता पर वे मुग्ध होते हैं। लव से इन सब की वात चीत होती है। इतने मे अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा आश्रम में प्रविशिष्ट होता है। उसका रक्षक लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु है। लव और चन्द्रकेतु दोनों मे युद्ध होता है। रामचन्द्र जी के आजाने से इन का युद्ध वन्द हो जाता है। राम लव का परिचय पूछते हैं। इतने में कुश भी आ जाता है। राम को उनकी वातो से सीता के पुत्र

होने का अनुमान सा होता है । इतने में वशिष्ट, वाल्मीकि, कौशाल्या और जनक आ जाते हैं ।

वाल्मीकि ऋषि ने नाटक के रूप में सारी सीता निर्वासन की जीवनी सब के सामने अप्सराओं द्वारा अभिनीत करवाई। सीता पवित्र सिद्ध हो गई। सब के कहने से राम ने सीता और लवकुश को स्वीकार कर लिया।

तीसरा नाटक चित्राङ्गदा रवीन्द्र बाबू लिखित है। यह अतुकान्त छन्दों में गुथा है। लेखक ने इस पर भी विवेचिका दृष्टि डाली है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—

चित्राङ्गदा मणिपुर की राजकुमारी है । राजा के शिव का वरदान होते हुए भी समाज की आवश्यकतानुसार कन्या उत्पन्न होती है। वह पुरुष वेश में रहती है। अस्त्र, शास्त्र सकला कला चातुरी, वेद शास्त्र आदि किसी में भी वह पुरुषों से कम नहीं एक वार चित्राङ्गदा जब शिकार खेलने जाती है और अर्जुन से मुठभेड़ होती है तो अपने गुण-गौरव के अभिमान को भूल नम्रता की परिधि में आती है। उसने अर्जुन से विवाह प्रस्ताव किया किन्तु असफल रही। देवताओं से सौन्दर्य-वर पा कर अर्जुन से विवाह होने पर एक रोज चित्राङ्गदा सौन्दर्य की अवधि समाप्त होने के निकट अर्जुन के सामने भांडा फोड़ देती है पर गुणग्राही अर्जुन इतने से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करते।

इस में सौन्दर्य से पति को वश में करबा और गुणों से चिर स्थायी प्रभुत्व स्थापित करने का आदर्श हैं।

प्रकृत नाटक का पुस्तक में सामान्य परिचय है, अथवा कुछ एक खरखरी अव्यवस्थित पद घटित पदों की उद्धरण पंक्तियां हैं। शकुन्तला और उत्तर राम चरित की भांति विस्तृत विवरण नहीं है।

है। भारत का भाग्य उसे जगाता है, पर उस कुम्भकर्णी निद्रा से वह उन्मुक्त नहीं होता, भारत भाग्य विलाप करता है।

तीसरा नाटक 'शाहजहां' है। जिसके लेखक द्विजेन्द्रलाल हैं। रूपनारायण पाण्डेय ने बंगाली से हिन्दी मे इसका अनुवाद किया है। प्रकृत उद्धृत भाग मे औरङ्गजेब द्वारा दाराशिकोह के बन्दी हो जाने पर शाहजहां और उसकी लड़की मे जो वार्तालाप हुआ, दिया है। कुछ भी न कर सकने वाले बेबस बाप का नालायक पुत्र पर जैसा क्रोध होता है उसका यहां अच्छा चित्र खिंचा है।

चौथा नाटक ध्रुवस्वामिनी है। इस के लेखक प्रमुख नाटककार 'कामायनी'—गदाधारी प० जयशंकर प्रसाद है। यह नाटक गुप्त-कालीन-इतिहास को लेकर बना है। जब रामगुप्त (जो विलासी थे) साम्राज्य की बागडोर संभाले हुए थे—शको ने आक्रमण किया अपनी जान बचाने के लिए शकराज के प्रस्ताव को स्वीकार कर वह ध्रुवस्वामिनी को उसके शिविर मे भेजने की आज्ञा देता है। वह ध्रुवस्वामिनी बस न चलने पर आत्म-हत्या करने पर उतारू हो जाती है। चन्द्रगुप्त द्वितीय उसे रोक स्वय ध्रुव स्वामिनी का रूप बना शकराज को मार राज्यगद्दी से रामगुप्त को उतार आप अधिकारी बन बैठता है।

यहां शकराज और मिहिरदेव की कन्या से जो शकराज की रानी बनने वाली थी बातचीत और चन्द्रगुप्त द्वारा शकराज की मृत्यु का वर्णन है। समाप्ति में ध्रुव स्वामिनी चन्द्रगुप्त को वरण करती है। "स्त्री-सम्मान का रक्षक ही उससे विवाह कर सकता है" यही इस उद्धरण का लक्ष्य है।

पांचवां नाटक बुद्धदेव या मूर्तिमान त्याग है। विश्वम्भर सहाय 'व्याकुल' इसके लेखक हैं। सम्वत् १९७६ के लगभग

द्वितीय सोपान

(प्रश्नोत्तर प्रकरण)

प्र०—मनुष्य आनन्देच्छुक क्यों है ? काव्य और कला की सृष्टि कब होती है ?

उ०—हिन्दू धर्म ग्रन्थों मे परमात्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप बतलाया है। साथ २ यह भी कहा है कि जीवात्मा उसी परमात्मा का "सिन्धु का विन्दु" की भांति अश है । अङ्ग में अङ्गी के न्यूनाधिक रूप में गुण अवश्य होते है, अत परमात्मा के गुण जीवात्मा में होने स्वाभाविक हैं। जब परमात्मा सत्, मननशील और आनन्दस्वरूप है तो जीव को भी वैसा ही होना चाहिए। मगर जीव में यह आनन्द स्वरूपता हर समय विद्यमान नहीं रहती क्योंकि उस पर माया का पर्दा है। वह हमसे उसकी वास्तविकता को छुपाए रहता है। वार वार हृदय मे लहरे सी उठती है। एक वार भी उन लहरो का आस्वाद लेने पर हृदय उधर ही आकर्षित रहता है और चाहता रहता है कि फिर वह आनन्द मिले। निष्कर्ष यह है कि भगवदंश होने के कारण मनुष्यों की आनन्द की ओर खिचना स्वाभाविक प्रवृति हो गई है।

क्रम २ के अभ्यास से जब वह आनन्द सिन्धु की नाईं बढ़ता हुआ मनुष्य के लघु हृदय में ठाठें मारने लगता है, और उबल कर बाहर निकल पड़ना चाहता है तभी काव्य और कला की सृष्टि होती है। ज्यों २ वह प्रकाश मे आता जाता है काव्य और कला की वृद्धि होती जाती है।

प्र०—अभिव्यक्ति किसे कहते हैं ? वह काव्य संज्ञक कब होती है ? रस को परमात्मा कैसे माना ?

का कथन होता है। आप वीती को प्रगीत या लिरीकेल (Lyrical) काव्य कहते हैं और जगवीती को अनुकृत् काव्य।

आप वीती में कवि अपना रोना रोता है। जग में वह जो कुछ देखता सुनता है उसे अपने हृदय की पीड़ा बना कर लोक के सामने प्रकट करता है इसमें भावों की मात्रा अधिक रहती है। ठीक है अपनी वस्तु मे रागात्मकता अधिक होनी ही है। इसमे कवि मृगहिंसक अहेरी की तरह छुप छुप कर टट्टी कर आड़ से वाण नहीं मारता वह तो अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हो शेर का शिकार खेलने के लिए सीधा मैदान में आ उतरता है। इसमे प्राय. संगीत की प्रधानता होती है। अत: यह प्रग त सज्ञा से व्यवहृत होता है। लाइर एक सितार की तरह के वाजे का नाम है उसी से इस का नाम लिरिक—लिरिकेलपड़ा है। यदि यह काव्य गद्य में भी होगा तब भी सगीत की प्रधानता रहती है।

जग वीती या अनुकृत—प्रगीत काव्य अन्तमु खी होता है यह वहिमु ख। इसमें वर्णन की प्रधानता होती है। वाहरी संसार मे कवि ने जो कुछ देखा है उसे वह ज्यों का त्यों रख देता है।

प्र०—"वास्तव में दोना प्रकार के (आप वीती, जग वीती) काव्यों में विशेष अन्तर नहीं है" कैसे ?

उ०—कवि अपनी समकालीन जनता का प्रतिनिधि होता है। आप वीती में वह जो कुछ कहता है सब दुनिया का देखा सुना अनुभव वेदना के रूप में प्रकट होता है। कवि की व्यापक सहृदयता ही उसके हृदय द्वारा रणित हो उठती है। लोक का मुख वन कर कवि वीणा संभालता है। अपने दुखड़े रोने में दुनिया का दु:ख भरा रहता है। सार यह है कि—उसकी आप वीती जग वीती की नकल है। जो जग में पहले वीत लेती है वही आपे में वीतती है। कवि जप जग वीती सुनाता है तव भी वह तटस्थ नहीं रह पाता। जो

कुछ वह जगत को सुनाता है उसे अपने भावों की दृष्टि से देखता है। अपने रंग में रंग कर उसका प्रकाशन करता है। दृश्य जगत उसकी भावनाओं में परिवर्तित होकर ही जगबीती का रूप धारण करता है। उसके पात्रों के साथ संवेदना होती है। मित्र के दुख की भांति उसे अपना दुख समझा जाता है। अपनी भावना के अनुकूल ही इस सत्ता समुद्र से दृश्य चुने जाते हैं। सूर और तुलसी एक समय में हुए पर भावना के भेद से ही तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को चुना और सूर ने कृष्ण की रसमयी लीलाओं के पद गाए। राम कृष्ण के आख्यान बाहरी संसार से सम्बन्ध रखते हैं पर उनमें कवि के हृदय की छाप है। यदि प्रगीत और अनुकृत में भेद होता तो सूर तुलसी भिन्न विषयी क्यों होते ? भेद हैं—पर सूक्ष्म। प्रगीत में कवि स्टेज रहता है और अनुकृत में बैक ग्राउण्ड (पृष्ठ भूमि) में।

प्र०—कवि को मानव जाति का वकील किस लिये माना है ?

उ०—जगबीती की परिभाषा ही इसका उत्तर है। वकील जैसे मुद्दी या मुद्दाअला का प्रतिनिधि होता है कवि भी ठीक वैसे ही अपनी समकालीन जनता का प्रतिनिधि होता है। मुद्दी या मुद्दाअले के सुखों से जैसे वकील सुखी और दुःख से दुःखक्रान्त सा होता है ठीक कवि की भी यही दशा है। वर्णनीय जगत में वकील की भाँति कवि की सहृदयता बढ़ी होती है उसके गाने को वह अपना गाना और रोने को रोना समझता है। वकील अपने आसामी के मत की पुष्टि में जैसे कोई कसर उठा नहीं रखता कवि भी प्रतिभा को समेट कर वर्णनीय विषय की ओर झुक पड़ता है। वकील असामी का मुंह बन कर जैसे बोलता है वैसे ही कवि विराट मानव का मुख बन कर गाने लगता है। उसकी निजी पुकार में जनता की पुकार निन्हित रहती है। वकील

जैसे नई नई युक्तियाँ सोचता है कवि भी वैसे ही नई २ कल्पनाओं की उड़ान लेता है। वकील जैसे अपार अर्थ-शास्त्र में से किसी एक नियम-विषय को चुनता है कवि भी उसी प्रकार इस अपार सत्ता सागर में से वही दृश्य चुनता है जो उस की भावनाओं के अनुकूल होता है। कवि वैसे ही अपने व्यक्तित्व को पृष्ठ भूमि में रख कर नायक के रूप को सामने लाता है जैसे वकील अपना नाम न लेकर मुद्दी या मुद्दाअले को जज के सामने करता है। कभी २ वकील जैसे वकालत की गाउन उतार कर अपना मामला पेश करने लगता है उसी भांति कवि भी कविता में अपना दुखड़ा रोने लगता है जिसे लिरीकेल (Lyrical) कहते हैं। इन्हीं समताओं को देखते हुए कवि को मानव जाति का वकील कहा है।

प्र०—महा काव्य, उपन्यास और नाटक में क्या अन्तर है?

उ०—महाकाव्य मे पद्य के आकार के अतिरिक्त जातीय अथवा युग की भावना की प्रधानता रहती है। उस का नायक जाति का नायक और प्रतिनिधि होता है। इसमे संस्कृति का प्राधान्य रहता है।

उपन्यास अनुकरणात्मक गद्यों में प्रधान होता है। नाटक गद्य और पद्य के बीच की वस्तु है। इस में गद्य की प्रधानता होती है महा काव्य की अपेक्षा उपन्यास और नाटक में चरित्र-चित्रण की मुख्यता रहती है। और उत्तर राम चरित्र के राम में आकाश पाताल का अन्तर है। रामायण के राम सुधारक जाति के नेता जाति रक्षक और मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। वेहिन्दू सभ्यता की साकार मूर्ति है। भगवान ने नर-देह धारण की है। उत्तर राम चरित के राम एक व्यक्ति हैं, राजा है। अपना सुख दुःख

रखते हैं। "प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवास दुःखतः" राज्याभिषेक से सुखी और वनवास से दुःखी न होते हों यह बात नही है। हर वस्तु से उनका अपना सम्बन्ध है। 'दुःख के लिये ही राम का जीवन है' जब वे कहते है तो उनका व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाता है।

नाटक और उपन्यास दोनों मे ही व्यक्ति की प्रधानता होती है मगर दृष्टिकोण मे अन्तर होता है। उपन्यास भूत से सम्बन्ध रखता है क्योंकि वह आख्यान का रूप है। आजकल अङ्गरेजी मे जो भविष्य कालीन उपन्यास लिखे जाते है वे भी लेखक द्वारा भूत बना कर लिखे जाते है। यद्यपि नाटक का विषय भी भूत ही है मगर नाटक कार उसे प्रत्यक्ष घटना के रूप मे उपस्थित करता है। उपन्यास घटी हुई घटना को कहता है। नाटक कार कहता नही, आखों से दिखाना चाहता है। उपन्यास की भांति नाटक कार का व्यक्तित्व कहीं भी नही दीख पडता। हाँ पात्र के रूप मे कही सूक्ष्म-द्रष्टा को दीख पडे तो दीख पड़े। सिनीमे के ऑपरेटर की भाँति वह अपने व्यक्तित्व को छुपाये रखता है।

१०—वास्तविक संसार और नाटक में क्या भेद है?

नाटक के अभिनेता स्वय अपना व्यक्तित्व नहीं रखते। जिन सुख दुःखो, भावभङ्गियों, चेष्टाओं को वे दिखाते हैं उनकी वे अपनी नही होती, अनुकरण मात्र होती है। उनको रोना गाना अपने हृदय से सम्बन्ध नहीं रखता, केवल दिखवा मात्र होता है। सांसारिक व्यक्ति अपने दुःख सुख के कारण हृदय से रोता और गाता है। अभिनेता के आंसू भी थूक के बने होते हैं। सांसारिक व्यक्ति की तरह "दृगवारि सौं बूड़ि जात सब गाम" नही होते। यहाँ तक कि उनकी वेशभूषा, खान पान और देखना बोलना तक भी अपना नही। परतन्त्रता के सूत्र मे बन्धे कठपुतली की भांति इशारे पर नाचते है। 'मैं क्या कह रहा हूँ' इतना तक भी उन्हें

ज्ञान नहीं होता। निष्कर्ष यह है कि नाटक वास्तविक संसार की नकल है और उस में विस्तृत जीवन की संक्षिप्त पुनरावृत्ति होती है।

प्र०—रूपक की नाम सार्थकता सिद्ध करके बताओ कि रूपक को रूपक न कह कर नाटक नाम से क्यों पुकारा जाता है?

उ०—एक व्यक्ति का दूसरे में आरोप करना रूपक कहलाता है। इसीलिये विश्वनाथ ने "रूपारोपात्त रूपकम्" कहा है। जब नट के ऊपर दुष्यन्त का आरोप किया जाता है अर्थात् वह नट जब दुष्यन्त का रूप बना कर मच पर आता है तभी नाटक का अभिनय होने लगता है। रूपक अलंकार जैसे मुख मे चन्द्र का आरोप करने से सिद्ध होता है, उसी तरह नट मे अनुकार्य पात्रों (दुष्यन्तादि) का आरोप करने से रूपक की प्रसूति होती है। मच पर आये नट को नट न कह कर अनुकार्यपात्र दुष्यन्त शकुन्तला आदि कहते हैं।

नाटक रूपक के दश भेदों मे से एक है। पारिभाषिक दृष्टि से रूपक नाटक की अपेक्षा अधिक व्यापक है। किन्तु नाटक रूपक के भेदों में मुख्य है अतः अधिक प्रसिद्धि इसे ही मिली है। नाटक का सम्बन्ध नट से है। दश रूपक में लिखा है कि "अवस्थानुकृति र्नाट्यम्" अवस्थाओं की अनुकृति नाट्य कहलाती है। रूपक में अवस्थाओं की अनुकृति ही होती है, और उस अनुकृति की नाटक में प्रधानता होती है अतः रूपक रूपक नाम से न पुकारा जा कर नाटक नाम से ही यह काव्य प्रसिद्ध है। कुछ रूढि के नियम को भी मानना पड़ता है। परम्परा से ही रूपक को रूपक न कह कर नाटक नाम ही से व्यवहृत किया जाता है। मगर रूढि भी किसी हेतु को लिये होती है। वह हेतु है अवस्थानुकृति की प्रधानता।

प्र०—इतर काव्यों की अपेक्षा नाटक का जीवन में क्या महत्व है ?

किसी श्रव्य के सुनने या पढने से शब्दों द्वारा कल्पना की सहायता से मानसिक चित्र उपस्थि होते है। नाटक मे कल्पना पर विशेष वल नही डाला जाता. उस मे होने वाली सभी वस्तुये प्रत्यक्ष-बोधिनी होती है। अमूर्त से मूर्त मे अधिक प्रभाव होता है। नाटक मूर्त है। भाषा मे रही हुई नाटक कार का कमी अभिनेताओं की भावभगी स पूरी हो जाती है। नाटक में प्रभावोत्पादिनी क्षमता अधिक होती है। आंख और कान में चार उंगल का अन्तर है। कानों सुनी से आंखो देखी वात में जो सत्यता की विशेषता होती है वही इतर काव्यों से नाटक में होती है। यदि हम यह सुने कि अमुक स्थान पर गाड़ी टकरा गई या अमुक नगर में एक व्यक्ति का छुरे से वध कर डाला गया तो हमारे भावों की उस से उतनी जागृति नहीं होती जितनी कि प्रत्यक्ष देखने से होती है। थोड़े पढ़े लिखे व्यक्तियों पर तो मूर्त जितना प्रभावोत्पादक होता है उतना अमूर्त नही और नाटक जनता की वस्तु है। इस में लोक रजन और लोक हित की सामग्री अधिक रहती है। शास्त्रों और कलाओं की दृष्टि से भी नाटक अधिक महत्व शाली है। इसमें सभी कलाओं और शास्त्रो का समावेश होता है।

प्र०—नाटक की मूल भूत प्रवृत्ति क्या है ?

उ०—मानव-सभ्यता का इतिहास वच्चों के जीवन में सजीव शब्दों मे अङ्कित रहता है। मनुष्य की स्वाभाविक अनुकरण-प्रियता का वोध वच्चों के जीवन से ही होता है। वड़े पुरुषों को जव वच्चा घोड़े पर सवार देखता है तो वह लकड़ी का घोड़ा वना कर सरपट दौड़ाता है। कहीं अपनी कल्पना के वल पर स्वयं इञ्जन का रूप रख कर फक्क करता हुआ अपने समान वच्चे

को गाड़ी के डिब्बे बना अपने पीछे दौड़ाता फिरता है। वह अपने पिता की लम्बी मूछों का स्याही लगा कर अनुकरण करता है। लड़कियाँ ईंटों के घरौंदे बन कर गुड्डे गुड्डियों का विवाह कर उन्हें उन में लाकर बैठाती है। जिस से उन्हें आगामी गार्हस्थ्य जीवन के सुख की पहले से ही अनुभूति होने लगती है। बस यही नाटक की मूल भूत प्रवृत्ति है।

प्र०—अनुकरण की प्रवृत्ति मनुष्य में क्यों होती है? इस का आधार क्या है? नाटक में कौनसी मनोवृत्तियाँ काम करती हैं?

उ०—आत्मा सदा विस्तृत होने की इच्छा रखती है, अत. हर मनुष्य अपनी आत्मा का विस्तार देखना चाहता है। उसे आत्मा के विस्तार से सुख और सङ्कोच से दुःख पहुंचता है। बच्चों को अपनी संकुचित सीमायें और अल्पज्ञान पसन्द नही इसीलिये वह बड़ों का अनुकरण करता है, उन जैसा बनने का प्रयत्न भी करता है। वह सोचता है कि पिता जी मे और मुझ मे क्या अन्तर है? केवल इतना ही न कि मेरे मुंह पर मूंछे नहीं है अब वह पिता जी बनने की इच्छा से स्याहा ओठ पर पोत अपने छोटे भाई बहना को कहता है कि मुझे पिता जी कहो कभी बाबू जी का हैट पहन कर माता से कहता है—जल्दी खाना खिलाओ हम दफ्तर में जायेगे, देर होती है। माता हसती है, बाबू जी भी अपने दो रूप देख कर फूला नहीं समाता। छोटे भाई बहन कृत्रिय मूंछों से विस्मित और हर्षित होते हुए पिता जी कहते हैं। इस भांति अनुकरण से अपना और दूसरो का मनोरञ्जन होता है, बड़ों की समता प्राप्त होती है और ज्ञान का दायरा चौड़ा हो जाता है।

नाटक के मूल में चार मनोबृत्तियाँ काम करती हैं :—

(१) अनुकरण।

प्रो० मेक्समूलर, लेवी, डा० हर्टेल आदि आचार्यो का कथन है कि भारतीय नाटकों का उदय वैदिक ऋचाओं के गान मे हुआ है। यज्ञ के अवसरों पर ये ऋचाएं गाई जाती थी। इन्द्र मरुतों का संवाद तथा साम विक्रय-सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख है। अन्य धार्मिक अवसरों पर भी नृत्य गीतादि का विधान है—"रात्रौ नृत्य गीतादिक चरेत्"।

डा० रिजवे ने नाटक का उदय मृतक वीरों की पूजा से माना है। उसका कहना है कि मृतकों की आत्माओं को सन्तुष्ट करने के लिए गीत नाटकादि का आयोजन हुआ करता। राम कृष्ण लीलाएं कालान्तर से होती आई है। इस महाशय का मत ठीक नहीं माना जाता।

प्रो० हिलेब्रां और प्रो० नोनो भारतीय नाटकों का उदय लौकिक कृत्यों से मानते हैं। लोक रजन के निमित्त गीत नृत्य का जन्म हुआ और फिर इन से नाटक बन गये। अशिक्षित लोगों के अनुकरणात्मक नृत्यो से ही नाटकों की उत्पत्ति हुई है नाटकों में लोक भाषा प्राकृत का होना उनकी लौकिकता का प्रमाण है।

इन महाशयों का यह प्रलाप-मात्र है। धर्म प्राण भारत वर्ष मे यह सभावना नहीं की जा सकती है। फिर यहाँ के सामाजिक लौकिक और धार्मिक कृत्यों में ही भेद नहीं है। जब दुकानदार भी अपने गोलक को महादेव बाबा का गोलक कहता है, विवाह भी जब धार्मिक सम्बन्ध है तो धार्मिकता और सामाजिकता मे क्या भेद रहा।

नाटक में प्राकृत भाषा का प्रयोग लौकिकता को सिद्ध नहीं करता, वह तो स्वाभाविकता लाने के लिए होता है।

एक पिशल महोदय हैं जो भारतीय नाटकों का मूल लौकिक

आधार मान कर उन का हृदय 'कठपुलियों का नाच' से फरमाते हैं।

हाँ, भारत में कठपुतलियों का नाच अवश्य हुआ करता। गुणाढ्य की बृहत्कथा तथा राजशेखर की बाल रामायण इसका प्रमाण है। बृहत्कथा में मायासुर की कन्ना के पास ऐसी कठपुतलियाँ बताई है जो नाचती गाती और हवा में उड़ जाती थी। महाभारत में भी उत्तरा ने अर्जुन से एक पुतली लाने को कहा था। मगर इस से तो भारतीय नाटकों का जन्म नहीं माना जा सकता। कल बाजार में एक साधु का कुत्ता नाचता था और राम राम बोलता था। तो क्या कुछ दिनों के बाद इस से भी नाटकों का उदय मान लेंगे ?

वास्तव में पिशल साहब सूत्रधार और स्थापक शब्दों को पढ़ कर ऐसा कह बैठे है। कठपुतलियों के नाच में सूत्रधार डोरा पकड़ा करता और स्थापक सजाया करता था। वे हीं शब्द आज कलकी नाटकों में देखने में आते हैं। उन्हों ने एक पर्दे पर अभिनय करती हुई चमड़े की पुतलियों की छाया डाल कर चलते फिरते चित्रों का सा प्रभाव उत्पन्न किया जाना भी लिखा है। मगर इस से तो सिनेमा के आविष्कार की प्राचीनता सिद्ध होती है। कीथ साहब ने इसका निराकरन बड़े अच्छे ढङ्ग से किया है— "छाया नाटक थे मगर वे बहुत पीछे की चीज है। उन्हें भारतीय नाटकों का मूल नहीं माना जा सकता। छाया नाटक तो केवल एक दूताङ्गद है, जो तेरहवी शताब्दी का है।"

सूत्रधार शब्द के आधार पर भारतीय नाटकों का उदय कठपुतलियों से नहीं माना जा सकता। सूत्र तो मकान बनाने वाले शिल्प कार भी रखते हैं। व्याकरण और दर्शनों में भी सूत्र होते हैं। किसी बात के बढ़ाने को भी हिन्दी में सूत कातना कहते हैं। सूत्र किसी कथा के तारतम्य को भी कहते हैं। सूत्रपात शब्द भी

हिन्दी में प्रचलित है। जिसका अर्थ है आरम्भ करना। अस्तु, पिशल साहब इतना कहां जानते थे। अपनी बुद्धि के अनुसार ही तो लिखेंगे! अधिक कहाँ से लाये?

सारांश यह है—भारतीय नाटकों का उदय वैदिक कर्मकाण्ड और धार्मिक अवसरों पर होने वाले अभिनयात्मक नृत्यों से हुआ। पीछे रामायण, महाभारत, काव्य और इतिहास ग्रन्थों से उसे काफी सामग्री मिली और वह विकसित होता गया। जब प्राचीन समय में धर्म से बाहर कोई कृत्य होता ही न था तो नाटकों का जन्म वर्णसंकरता में कैसे गिना जा सकता है। यूनान में भी तो नाटकों का उदय धार्मिक क्रिया-कलापों से हुआ था। इंगलिस्तान में भी तो नाटक का सत्रपात् रामलीला कृष्ण लीला की तरह क्राइस्ट की जीवन लीलाओं में हुआ था। फिर धर्म-प्राण भारत के बारे में ये दुर्मुख कहाँ से पैदा होने लगे। नाटक धार्मिक अवसरों पर खेले जाते थे यह बात तो भिन्न २ नाटकों की प्रस्तावना में भी लिखा होती है। पहले नाटकों का उदय धार्मिक कृत्यों से ही हुआ हो पीछे वे लौकिक उत्सवों में भी अपनाए जाने लगे होंगे।

प्र०—भारतीय नाट्यकला की प्राचीनता के विषय में तुम्हारी क्या धारणा है? भारतीय सभ्यता को पिछड़ा हुआ कहना कहां तक संगत है?

रसातल चुम्बी अगाध रत्नाकर की गहराई की थाह मिल सके तो भारतीय नाट्यकला का समय निश्चित् हो सकता है। जब से पृथ्वी और आकाश है या जब से भारत है तब से ही भारत में नाट्यकला को मान लेना अत्युक्ति न होगी।

वेद अनादि हैं। आर्यों का विश्वास है कि ये ईश्वर की देन हैं। ऋग्वेद में नाटकीय सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है। इन्द्र,

वरुण, भव, रुद्र आदि देवता स्तुति परक गीतों से वेद भरे पड़े हैं। सरमा और पणिस, यम यमी, उर्वसी और पुरूरवा के बड़े रोचक संवाद भी उन में है। विश्वामित्र, वशिष्ट आदि के आख्यान पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं कथावस्तु, संगीत और कथोपकथन ये तीन ही नाटक के मूलाधार हैं जो वेदों मे मिलते हैं। वस जब से वेद हैं तभी से भारत में नाटक हैं।

जो लोग यह कहते हैं कि:—'सूजी, घी पाना, शक्कर के विद्यमान होते हुए भी यह सम्भव है कि हलुआ तैयार न हुआ हो" यह उनका केवल कुक्कुर-क्रन्दन है। इस के माने ये हैं कि हमारे पुर्वज ऋषि मुनि बुद्धू थे, सोचने समझने की शक्ति अब हम में हुई है उन मे नहीं थी। विश्व के किसी तत्व को खोजे विना जिन्होंने नहीं छोड़ा शब्दों और वर्णों तक के चमड़े उतार २ कर उन की हड्डी पसलियों को जिन्होंने छान मारा भला वे इस नाटक जैसे विषय को जीवन के प्रतिबिम्ब को अछूता छोड़ देते ?

पाणिनि का समय ईसा से ४०० वर्ष पूर्व माना जाता है। उन्होंने संस्कृत व्याकरण जैसा जटिल शास्त्र बनाया है। भाषा-विज्ञान के शास्त्रों का यह निरूपण भारतीय प्रतिभा की उत्कटता का अभिव्यञ्जक है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में कृशाश्व और शिलालिन नामक नाट्याचार्यों के नाम आए हैं। इसके पश्चात् पतञ्जलि के महाभाष्य मे 'कसवध' और बलिवन्धन नाटकों का उल्लेख मिलता है

विजय पिटक के चुल्लवग्ग से पता चलता है कि रंगशाला में नर्तकियों से बाते करने और नाटक देखने के अपराध में अश्वजित और पुनर्वसु नामक दो भिक्षुओं को निर्वासन-दण्ड मिला था और आगे विहार में न घुसने का विधान कर दिया गया था।

जैन कल्पसूत्र के लेखक भद्रबाहु स्वामी जो ईसा ३०० वर्ष पूर्व हुए थे ने एक जड़वृत्ति साधु का उल्लेख किया है जो छुप २

कर नटों का नाटक देखने जाया करता था। उसके गुरू ने म
कर दिया कि नटों का नाटक न देखने जाया कर। तब एक रो
उसे अनुपस्थित देख गुरू ने पूछा कहां गया था ? जड़वृति शि
ने कहा कि नाटक देखने गया था। गुरू ने जब यह पूछा कि
तो मना किया हुआ था तब उत्तर मे उसने कहा कि नटों
नाटक तो उसी दिन देखना छोड़ दिया था अब नटियों
नाटक देखने जाया करता हूँ।

भरत मुनि के नाट्य शास्त्रों में 'अमृत मन्थन' और 'त्रिपु
दाह' दो नाटकों के खेले जाने का उल्लेख है।

वाल्मीकि रामायण में भी 'बहु नाटक संघैश्च सयुक्तांव स
पुरीम्' लिखा है (वह पुरी बहुत नाटक सङ्घों सयुक्त थी)।
कालिदास तो आबालवृद्ध जनता में प्रसिद्ध है उसका सम
अङ्गरेज़ लोग चौथी शताब्दी मानते हैं। मगर वह विक्रमादि
के समय में था। इससे ईश्वी सम्वत् पहले ही पाए जाने का प्रमा
है। डा० पेटर्सन ने भी इस बात को माना है। कालिदास ने अप
'माल विकाग्निमित्र' में अपने से पूर्व भास, कवि पुत्र सौमि
आदि नाटक कारों का नामोल्लेख किया है। इस प्रकार कालिदा
से कई सो वर्ष पूर्व ही अच्छे नाटक लिखे जाने लगे थे।

अश्वघोष ७८वीं ईश्वी का माना जाता है।

सुरगुजा रियासत की रामगढ़ पहाड़ी में दो गुफाओं
यूनानी ढङ्ग के प्रेक्षागृह मिलते हैं। गुफा के लेख से पता चल
है कि वे सुतनुका नाम की देव दासी ने बनवाए थे। प्रेक्षागृ
की सारी चित्रकारी भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के अनुकूल
गुफा ३२० वर्ष ईसा से पूर्व की मानी जाती है । इस से सि
होता है कि नाट्यकला का उन दिनों इतना विकास हो गया
कि उन के प्रक्षागृह भी बनवाए जाने लगे थे।

बौद्धकाल से प्रथम की चीजों का समय निश्चित करना बहुत कठिन है। मिश्र यूननादि पश्चिमीय देशों में काल की अवहेलना नहीं की गई। निश्चिततिथियाँ मालूम होने से वे पुरानी समझी जाती हैं किन्तु भारत वर्ष के लोग सदा से धर्मधुरन्धर रहे हैं। अपनी बड़ाई करना उन्होंने नहीं सीखा। यहाँ तक कि कोई रचना करके उस पर अपना नाम* तक भी नही दिया इससे कोई भी प्राचीन काल की तिथि निश्चित नहीं। उनमें वर्णन किए हुए तत्कालीन समाज से ही अनुमान लगाया जाता है। हमारे ऐसे अनुमानों को देख कर विद्वान् पक्ष-पात न करना चाहते हुए भी प्रत्यक्षवादी होने के कारण भारतीय सभ्यता को पिछड़ा हुआ मान लेते हैं। अधिकांश लोग इनमें हर जाति और देश से अपने को ऊचा सिद्धकरने की ग़र्ज से भी भारत को पिछड़ा देते हैं। सारांश यह है कि जो लोग स्वयं कोल, द्राविड़, हूण, शक, यवन, अन्त्यज, श्वपच, विलोक, वर्णशङ्कर दनुजवशोद्भव हैं, वे ही सदा से सभ्य भारत के महत्व को गिराने के लिए कुछ ही दिनों से सभ्य वतला कर अपने जैसा सिद्ध करने के प्रयोजन से शृगाल हुकहुकी का अभिनय किया करते हैं। आगे इनके पुत्र पौत्रादि तो शायद भारत को लार्ड हार्डिङ्ग के समय से सभ्य मानें। किंवहुना—भारत को सभ्यता में पिछड़ा वतलाना किसी अंश में भी संगत नहीं है।

प्र०—भारतीय नाट्यकला पर यूनानी प्रभाव के पक्ष विपक्ष में युक्ति युक्ति उत्तर दो।

उ०—पश्चिमी विद्वानों का मत है कि भारत से यूनान और मिश्र की सभ्यता वढ़ी चढ़ी है। वे भारतीय नाट्यकला को निश्चित रूप रेखा यूनानी प्रभाव से सिद्ध करते हैं क्योंकि यूनान और भारत का सम्पर्क इतिहास प्रसिद्ध है।

---

* आत्मनाम गुरो र्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयात् ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥

वात यह है कि भारत मे यूनानी नाटकों के सम्पर्क से पहले ही नाट्य विकास हो चुका है तो इस प्रश्न की गुञ्जायश ही कहाँ? ये यूनानी प्रभाव सम्बन्ध कल्पनाएं उस वक्त उन लोगों के दिमागों में सूझने लगी थी जब कि कालिदास के नाटकों के अतिरिक्त और अन्य नाटकों का बोध तक भी न था। भास और अश्वघोष नाटककारों के नाम ज्ञात न थे। (कालिदास को भी बहुत पीछे का कहते थे।)

बौद्ध कालीन राजा यूनानियों द्वारा सिक्के बनवा सकते हैं। शिल्प में भी अनुकरण किया जा सकता है। किन्तु नाटक का सम्बन्ध तो जीवन से है। यूनानी इतनी देर तक नहीं रहे हैं कि उनके जीवन का हमारे नाटक कारों पर प्रभाव पड़े। इस के लिए चिरस्थायी सम्बन्ध की आवश्यकता है। यातायात के साधनों के अभाव से यह भी सम्भव नही था कि वे पश्चिम के एक कोने से सारे भारत को प्रभावित कर देते।

हमारे सारे नाटकों की सामग्री अपनी है—सभी रामायण और महाभारत से सम्बन्ध रखते हैं। आकार भी यूनानी नहीं है। हमारे नाटक अङ्को में विभाजित होते हैं। यूनानी नाटकों मे अङ्क नही होते। दो दृश्यों मे अन्तर दिखलाने के लिए सम्मिलित गान (कोरस) का प्रयोग करवाया जाता है। वहाँ के नाटक उपोद्घात से आरम्भ हो कर उपसंहार में समाप्त होते हैं। रोमन मे अङ्क विभाजन है, पर वे तो बहुत पीछे के हैं। यूनान में सुखांत नाटकों का भी सृजन हुआ। जिनका कोई विशेष महत्व न था। जब उधार ही लेने लगे तो अच्छी वस्तु क्यो न ली जाए?

यूनानी प्रभाव मानने वाले लोग यवनिका शब्द पर विशेष जोर देते हुए कहते हैं कि यूनान से ली हुई के कारण इस का नाम यवनिका है। मगर यवन तो यूनान ही के रहने वालों को

नहीं कहते—फारिस, मिश्र, अफगानिस्तान, ईरान, अरव इन सभी देशवासियों को यवन नाम से पुकारा जाता है। फिर तो अफगानिस्तान और अरव का भी भारतीय नाटकों पर प्रभाव (जहाँ नाटक खेलना और देखना गुनाह है) होना चाहिए। यवनिका शब्द तो यूनानी नाटकों में भी नही है। अरे भले मानुपो। यह यवनिका शब्द भारत का ही है। हलायुध और अमर कोप में देखो 'अपटी काण्डपट: स्यात् प्रति सीरा जवनिका तिरस्करिणी'। 'प्रतिसीरा जवनिका स्यात् तिरस्करिणी च सा'।

जवनिका जव (वेग) से वनी और जवनिका से यवनिका हो गई। यह वेग से उठाई जाती है।

चिन्हों द्वारा शकुन्तला, सुहराव पहचानने आदि की जो सामान्य समताएं दीख भी पड़ती हैं वे दो दिमागों से भिन्न २ भी सोची जा सकती है। या बूढ़े भारत से यूनान ने ये वातें सीख ली हैं। सोचने की वात है भला वाप वेटे की क्या नकल करेगा। किसी बूढे का अपने जीवन का वास्तविक आनन्द लेने के लिए क्या किसी ने वच्चों का अनुकरण करते गुड्डे गुड्डियों से खेलते देखा है? यहाँ, वच्चे रूई चिपका कर दादा वनने का अनुकरण अवश्य करते है। भारत-पितामह जिन खेलों को खेल कर वहुत दिनों से तृप्त हुआ वैठा है भला वह अव इन वच्चों से थोड़े ही सवक लेगा। अस्तु, भारत पर यूनानी प्रभाव सिद्ध करने वाले झूटे और पक्षपाती हैं।

प्र०—नाटक के तत्व कौन कौन से हैं?

उ०—वस्तु, पात्र, अभिनय (कथोपकथन), उद्देश, शैली।

प्र०—उपन्यास और नाटक के कथावस्तु और पात्रों में क्या भेद है?

उ०—उपन्यास और नाटक की रूप रचना में जो भेद है वही इन तत्वों में है। उपन्यास अपने घर के कोने वाली खाट में पढ़ कर दो चार सप्ताहों में समाप्त किया जा सकता है। नाटक दर्शन को नाट्यशाला में बैठना पड़ता है। परन्तु तीन चार घंटे से अधिक समय नहीं लगता। नाटक के पात्रों के विषय में नाटककार कुछ भी नहीं कहता। उनके चरित्रों का उद्घाटन अपने क्रिया-कलपों चेष्टाओं द्वारा होता है। उनके कथोपकथन या स्वगत कथन से हृदयों की थाह मिलती है। भावभंगी द्वारा कथोपकथन की पूर्ति होने से भाषण की संक्षिप्ता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। उपन्यास की तरह हर बात की नाटक में व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है।

प्र०—वस्तु किसे कहते हैं? इसके कितने भेद हैं? कथावस्तु के आधार के सम्बन्ध से उसके कितने भेद हैं?

उ०—नाटक के कथानक को वस्तु कहते हैं। अङ्गरेजी में इसे प्लॉट कहा जाता है। यह दो प्रकार की होती है—आधिकारिक, प्रासङ्गिक।

आधिकारिक में मुख्य पात्रों से सम्बन्ध रखने वाली कथा का मूल्य विषय होता है। इसका सूत्र प्रारम्भ से समाप्ति तक रहता है।

प्रासङ्गिक वस्तु का सम्बन्ध नायक और नायिका से न रह कर दूसरे निम्न पात्रों से रहता है। यह कथा भाग मूल-कथा को बढ़ाने के लिए होता है। इसमें फल सिद्धि नायक के अतिरिक्त किसी अन्य को होती है। यह फल सिद्धि नायक की अभीष्ट सिद्धि से पृथक होती है किन्तु वह नायक की हितविधायिका अवश्य होती है।

रामायण में राम-कथा आधिकारिक है, सुग्रीव की प्रासङ्गिक। सुग्रीव की वालि से रक्षा हुई पर इससे राम-कथा को प्रगति मिली। इसीसे वानरों की सेना तैयार हुई, हनूमान सीतान्वेषण को गए।

प्रासङ्गिक कथा वस्तु भी दो प्रकार की है—पताका, प्रकरी। जिस प्रासङ्गिक कथा का प्रसग आधिकारिक कथा के अन्त तक चलता रहे वह पताका कहलाती है—जैसे सुग्रीव-कथा। जो प्रासङ्गिक कथा बीच में ही रुक जाती है वह प्रकरी नाम से पुकारी जाती है—जैसे राम केवट सम्वाद।

कथा वस्तु के आधार के सम्बन्ध से तीन भेद हैं—

(१) जिस का आधार इतिहास, पुराण या परम्परागत जन-श्रुति होता है, उसको 'प्रख्यात' कहते हैं।

(२) जिस को नाटक कार अपनी कल्पना के बल पर खड़ा करते है, उसे उत्पाद्य कहते है। क्योंकि यह उत्पन्न कीं जाती हैं। आजकल सामाजिक नाटक प्रायः इसी प्रकार के होते हैं।

(३) इतिहास और कल्पना दोनों का जिस में मिश्रण होता है उसे मिश्र कहते है। यद्यपि कवि को इसमें कल्पना के लिये काफी गुञ्जाइश रहती है तथापि एक निर्दिष्ट सीमा से वह बाहर नहीं जा सकता। इतिहास की मूल बातों में हेर फेर करने से स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। नाटककार राणा प्रताप को पृथ्वीराज के समय का नहीं बतला सकता और न ही स्वतन्त्रता का विरोधी या चापलूस कह सकता है। हाँ जहाँ भाव की सत्यता में अन्तर पड़ता होगा वहाँ भाव शुद्धि के लिये या नायक-दोष निर्मोचन के लिये कुछ थोड़ी कल्पना से काम ले सकता है। महाभारत में दुष्यन्त शकुन्तला की कथा में दुर्वासा शाप और मुद्रिकालोप का कोई जिक्र नहीं पर कालिदास ने दुष्यन्त के

गौरव को रखने के लिये इस विषय की कल्पना कर लोक निन्दा-भय से दारा-त्यागी राजा के चरित्र को मलीन नहीं होने दिया।

प्र०—कार्य के व्यापार की दृष्टि से नाटकों की कितनी अवस्थायें हैं ?

उ०—कार्य के व्यापार की दृष्टि से नाटकों की पांच अवस्थायें हैं—

(१) प्रारम्भ—यह कथानक का आदि भाग है। इस में किसी फल की इच्छा होती है। जैसे—शकुन्तला नाटक में शकुन्तला दर्शन की इच्छा।

(२) यत्न—अभीष्ट सिद्धि के लिये प्रयत्न करना। दुष्यन्त का अपने विदूषक माढव्य से 'मुण्डित मस्तक जीर्णकलेवर किसी साधु के हाथ लगने से पहले प्रयत्न करो' आदि गुप्त मन्त्रणा करना।

(३) प्राप्त्याशा—बीच में उपस्थित हुए विघ्नों का निवारण हो फल प्राप्ति की आशा दिखलाई पड़ने लगती है। शकुन्तला की प्राप्ति में दुर्वासा का शाप विघ्न बन गया था। अब वह चौथे अङ्क के विष्कम्भक में शान्त सा हो जाता है। यहीं से प्राप्त्याशा आरम्भ हो जाती है, किन्तु वह केवल आशा मात्र है—शाप से मुक्त होने का केवल दिग्दर्शन है पूरी आशा नहीं।

(४) नियताप्ति—यहाँ सम्भावना मात्र न रह कर आशा निश्चियता धारण कर लेती है। धीवर से प्राप्त हुई अंगूठी से शकुन्तला मिलन की आशा निश्चित हो जाती है।

(५) फलागम—सुखान्त नाटकों में फल की प्राप्ति अवश्यम्भावी है। शकुन्तला के सातवें अङ्क में पति-पत्नी मिल जाते हैं।

यूरोपीय समीक्षा-शास्त्र में भी ऐसे ही पांच ही अवस्थायें मानी गई हैं—(१) व्याख्या (२) प्रारम्भिक सघर्ष-मय घटना (३) कार्य का चरम सीमा की ओर वढना (४) चरम सीमा (४) संघर्ष ।

प्र०—अर्थप्रकृति और सन्धि की परिभाषा लिख कर इन पर विशेष टिप्पणि लिखो ।

उ०—कथा वस्तु के वे चमत्कार पूर्ण अङ्ग जो कथा वस्तु को कार्य की ओर ले जाते है अर्थ प्रकृति कहलाते है । ये पांच है—

(१) वीज (२) विन्दु (३) पताका (४) प्रकरी (५) कार्य ।

वीज प्रारभ नाम की अवस्था से भिलता है। वीज में नाटक के फल की सम्भावना रहती है ।

विन्दु मे तेल के विन्दु का आरोप है। यह पानी में फैल कर विस्तार का द्योतक वनता है ।

पताका और प्रकरी में छोटी अवान्तर कथाएं सम्मिलित है जो मूल कथा की सहायक होती है ।

कार्य अन्तिम फल को कहते है ।।

कार्य और फलागम मिल जाते है मगर प्राप्त्याशा, नियताप्ति पताका और प्रकरी से मेल नहीं खाते । प्रकरी द्वारा प्राप्ति की आशा हो जाने के कारण शकुन्तला में शायद दोनों को एक कर दिया गया है ।

जिन में अवस्थाओं और अर्थ प्रकृतियों का मेल कराया जाता है उन्हें सन्धि कहते हैं । ये सन्धियाँ एक एक अवस्था की समाप्ति तक चलती हैं और उनके अनुकूल अर्थ प्रकृतियो से

योग कराती हैं। ये पांच हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निवर्हण या उपसंहार।

(१) प्रारम्भ नाम की अवस्था के साथ योग होने से जहाँ अनेक रसों और अर्थों के द्योतक वीज की उत्पत्ति होती है वहाँ मुखसन्धि होती है।

(२) जहां वीज अंकुरित होता दीख पड़े वह प्रतिमुख होती है। यह घटना क्रम को आगे खींचती है।

(३) गर्भ सन्धि में अंकुरित हुए वीज का विस्तार प्राचुर्य की ओर लपकता है। प्राप्त्याशा और पताका का इस में योग रहता है।

(४) नियताप्ति और प्रकरी के योग वाली अवमर्श सन्धि होती है। इसमें नई वाधायें उपस्थित होती हैं।

(५) निवर्हण सन्धि में कार्य और फलागम का योग हो कर नाटक समाप्त हो जाता है।

प्र०—दृश्यश्रव्य किसे कहते हैं? सूच्य और विरोधक से क्या तात्पर्य है? अर्थोपेक्षक क्या वस्तु है? अर्थोपेक्षक कितने हैं, सविस्तार लिखो?

जो कथावस्तु प्रधान रूप से मंच पर घटित होती दिखाई जाती है उसे दृश्य श्रव्य कहते हैं।

जिस को रङ्गमञ्च पर घटती हुई न दिखा कर पात्रों द्वारा सूचित किया जाता है ताकि कथानक की पूर्ति हो सके—उसे सूच्य कहते हैं।

जो दृश्य मच पर वर्जित रहते हैं उन्हे विरोधक कहते हैं। जसे मृत्यु, राष्ट्र विप्लव, भोजन, स्नान मैथुन आदि। इन से रस मे वाधा पहुंचती है।

कथासूत्र को मिलाये रखने के लिये सूच्य वस्तु की सूचना देने के जो साधन है उन्हे अर्थोपेक्षक कहते है। इन की सख्या पांच हैं :—

(१) विष्कम्भक—इस दृश्य मे पहले हुई या वाद में होने वाली घटना की सूचना दी जाती है। इसमें केवल दो नीच पात्रों का वार्तालाप होता है। नाटक के आरम्भ या दो अङ्कों के वीच मे इसे रखा जाता है। इसके पात्र सस्कृत और प्राकृत दोनों वोल सकते हैं।

(२) चूलिका—जिस कथाभाग की पर्दे के पीछे से (नेपथ्य में) सूचना दी जाती है उसे चूलिका कहते हैं।

(३) अंकास्य—अङ्क की समाप्ति में जहाँ वाहर जाने वाले अभिनेताओं द्वारा अगले अङ्क की कथा की सूचना दी जाती है। इस से पूर्व पर अङ्कों की कथा का मेल कराया जाता है।

(४) अङ्कावतार—विना पात्रों के परिवर्तन के प्रथमाङ्क की कथा आगे चलाई चाती है। इसमें प्रथम अङ्क के पात्र वाहर जा कर फिर लौट आते है।

(५) प्रवेशक—विष्कभक और प्रवेशक में मामूली अन्तर है। प्रवेशक दो अङ्कों के वीच में ही आते हैं। इसके पात्र पाकृतभाषी निम्नश्रेणी ही के होते हैं। मुद्राराक्षस में सिद्धार्थक और समिद्धार्थक का कथोपकथन प्रवेशक का वड़ा सुन्दर उदाहरण है।

उपन्यास और काव्य में लेखक या कवि द्वारा जो घटनाओं का विवरण होता है वह नाटक में अर्थोपेक्षकों से होता है।

योग कराती हैं। ये पांच हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निवर्हण या उपसंहार।

(१) प्रारम्भ नाम की अवस्था के साथ योग होने से जहाँ अनेक रसों और अर्थों के द्योतक वीज की उत्पत्ति होती है वहाँ मुखसन्धि होती है।

(२) जहां वीज अंकुरित होता दीख पड़े वह प्रतिमुख होती है। यह घटना क्रम को आगे खींचती है।

(३) गर्भ सन्धि में अंकुरित हुए वीज का विस्तार प्राचुर्य की ओर लपकता है। प्राप्त्याशा और पताका का इस में योग रहता है।

(४) नियताप्ति और प्रकरी के योग वाली अवमर्श सन्धि होती है। इसमें नई वाधायें उपस्थित होती हैं।

(५) निवर्हण सन्धि में कार्य और फलागम का योग हो कर नाटक समाप्त हो जाता है।

प्र०—दृश्यश्रव्य किसे कहते हैं ? सूच्य और विरोधक से क्या तात्पर्य है ? अर्थोपेक्षक क्या वस्तु है ? अर्थोपेक्षक कितने हैं, सविस्तार लिखो ?

जो कथावस्तु प्रधान रूप से मंच पर घटित होती दिखाई जाती है उसे दृश्य श्रव्य कहते हैं।

जिस को रङ्गमञ्च पर घटती हुई न दिखा कर पात्रों द्वारा सूचित किया जाता है ताकि कथानक की पूर्ति हो सके—उसे सूच्य कहते हैं।

जो दृश्य मंच पर वर्जित रहते हैं उन्हे विरोधक कहते हैं। जसे मृत्यु, राष्ट्र विप्लव, भोजन, स्नान मैथुन आदि। इन से रस मे वाधा पहुचती है।

कथासूत्र को मिलाये रखने के लिये सूच्य वस्तु की सूचना देने के जो साधन हैं उन्हे अर्थोपेक्षक कहते है । इन की सख्या पांच हैं :—

(१) विष्कम्भक—इस दृश्य मे पहले हुई या वाद में होने वाली घटना की सूचना दी जाती है। इसमें केवल दो नीच पात्रों का वार्तालाप होता है। नाटक के आरम्भ या दो अङ्कों के वीच में इसे रखा जाता है। इसके पात्र संस्कृत और प्राकृत दोनों वोल सकते हैं।

(२) चूलिका—जिस कथाभाग की पर्दे के पीछे से (नेपथ्य में) सूचना दी जाती है उसे चूलिका कहते हैं।

(३) अंकास्य—अङ्क की समाप्ति में जहाँ वाहर जाने वाले अभिनेताओं द्वारा अगले अङ्क की कथा की सूचना दी जाती है। इस से पूर्व पर अङ्कों की कथा का मेल कराया जाता है।

(४) अङ्कावतार—विना पात्रों के परिवर्तन के प्रथमाङ्क की कथा आगे चलाई चाती है। इसमें प्रथम अङ्क के पात्र वाहर जा कर फिर लौट आते हैं।

(५) प्रवेशक—विष्कभक और प्रवेशक में मामूली अन्तर है। प्रवेशक दो अङ्कों के वीच में ही आते हैं। इसके पात्र पाकृतभाषी निम्नश्रेणी ही के होते हैं। मुद्राराक्षस में सिद्धार्थक और समिद्धार्थक का कथोपकथन प्रवेशक का वड़ा सुन्दर उदाहरण है।

उपन्यास और काव्य में लेखक या कवि द्वारा जो घटनाओं का विवरण होता है वह नाटक मे अर्थोपेक्षकों से होता है।

प्र०—कथोपकन किसे कहा जाता है ? इसके भेदों की स्पष्ट वोधिनी व्याख्या करो।

उ०—कथावस्तु को प्राञ्जल बनाने के लिये जो पात्र परस्पर बातचीत करते हैं उसे कथोपकथन कहते हैं। इसे तीन भागों में बाँटा जाता है—श्राव्य, अश्राव्य, नियत श्राव्य।

(१) श्राव्य—जो सबके सुनने का हो। इसे प्रकट या प्रकाश भी कहते हैं।

(२) अश्राव्य—नो कथोपकन दूसरे पात्रों के सुनने के लिये न हो। इसे स्वगत या आत्मगत भी कहते है। आजकल यह दोष माना जाता है। कई एक का कथन है कि भावावेश में पात्र ऐसा करने लग पड़ता है मगर यह लम्बा न होना चाहिये।

(३) नियतश्राव्य—जो कुछ पात्रों के सुनने के लिये हो और कुछ के लिये न हो। इसके दो भेद हैं—अपवारित और जनान्तिक अपवारित में जिस पात्र से बात छुपानी हो उसकी ओर से मुंह फेर कर बात कही जाती है। जनान्तिक मे छिगुनी और अगूठा के अतिरिक्त तीन अंगुलियों की ओट में एक दो पात्रों को छोड़ कर बात जरा आहिस्ता से कही जाती है।

आकाश भापित भी कथोपकन का एक, मेद माना गया है। इस में एक पात्र ऊपर की ओर मुंह उठा उठा कर किसी कल्पित पात्र से बातें करता दीख पड़ता है। मुद्राराक्षस में मदारी (विराधगुप्त) ऐसे ही बातें करता है। भारतेन्दु का "विपस्य विपमौपधम्" नामक भाण सारा का सारा आकाश भापित में ही है।

प्र०—नायक किसे कहते हैं ? नायक निर्वाचन के नियम हैं ? भारतीय नाटकों के नायक कैसे होते हैं ?

"भारतीय नाटकों में चरित्र परिवर्तन के लिए कोई गुञ्जायश नहीं" क्या यह आक्षेप सत्य है ?

उ०—नायक या नेता मुख्य पात्र को कहते हैं। नेता शब्द धातु से बना है जिस का अर्थ है, ले चलना। जो पात्र कथा को फल की ओर ले जाता है वही नेता कहलाता है। नायक को ही फल प्राप्ति होती है।

कभी २ नायक निर्वाचन में बड़ी कठिनता सी उपस्थित हो जाती है। इसका सुगम साधन यह है कि कथा का फल किस से सम्बन्ध रखता है। श्रोता या पाठक वृन्द किस पात्र के पतन या उत्थान में अधिक रुचि रखते हैं। जिस पात्र के जीवन पर्यन्त की घटनाओं को जल्दी से जल्दी जानने के लिए उत्सुक रहते हैं। यह नियम नहीं है कि पात्र उदार विनय शील और सच्चरित्र ही हो। नायक की जीत ही हो पराजय न हो, उत्थान ही हो पतन न हो यह आवश्यक नहीं। आजकल दुष्ट प्रकृति के भी नायक होते हैं।

हमारे यहाँ के नायक उच्च उदार और गुण-सम्पन्न माने जाते रहे हैं। सुन्दर, विनय शील कुशल, त्यागी, प्रियवद, शुद्ध, लोक-प्रिय, भाषण पटु, अभिजात कुल, युवा, स्थिरचित्त, साहसी, मति मान कलाकार, शूरवीर, तेजस्वी और शास्त्रज्ञ होना नायक का परम आवश्यक माना है। नायक का प्रतिष्ठितवशोद्भव होना आवश्यक था किन्तु अब युग पलठ गया है किसी का भद्र जन होना अभिजात वंश ज़रूरी नहीं। कमल से कीचड़ कोयले से हीरा उत्पन्न होता है। दीपक की ज्योति से भी काजल प्रकट होता है। नादरशाह, नेपोलियन, हिटलर अभिजात तो नहीं कहे जायगे।

चरित्र परिवर्तन के लिए कोई गुञ्जायश नहीं ? अरे जो स्वतः विकसित है उसका भला क्या विकाश होगा ? पूर्णचन्द्र की और क्या वृद्धि होगी ? बात ठीक है—मगर हमारे यहाँ के नाटककार

इस को अधिक महत्व देते आए है। उन रसों में भी शृंगार, वीर और करुण का बोल बाला रहा है। इन रसों के लिए धीर, उदार और वीर नायकों की ही आवश्यकता रहती है, और वे आरम्भ से दर्शकों को इस शुद्ध चरित्र के सम्पर्क में लाना चाहते हैं। नाटक में नायक को नए गुण तो प्राप्त होते नहीं पहले से मौजूद गुणों का प्रकाशन होता है। चन्द्रमा तो क्षीण हो २ कर पूर्ण होता है। कमल भी संकुचित होकर विकसित होता है मगर नायक में यह क्षीणता, संकुचितत्व नहीं आते। नायक में पहले बुराई दिखलाकर दर्शकों के हृदयों पर आघात पहुँचाना हमारे यहाँ के नाटककारों ने नहीं सीखा।

चरित्र परिवर्तन की गुञ्जाइश होती भी है:—मरते समय वालि की भावना क्या शुद्ध नहीं हो गई थी ? वाल्मीकि क्या दस्यु से ऋषिराज नहीं बनाए थे ? दुर्योधन क्या अपने किए पर नहीं पछताया ?

प्र०—नायकों के प्रकारों का सलक्षण दिग्दर्शन कराओ, प्रतिनायक और पीठमर्द किसे कहते हैं ? विदूषक का नाटक में क्या महत्व है ?

उ०—नायक चार प्रकार के माने गए है।

(१) धीरोदात्त, (२) धीरललित, (३) धीर प्रशान्त, (४) धीरोद्धत।

नायक सभी उदार श्रेष्ट होते थे इसी लिए सब के आदि में धीर जोड़ा हुआ है। जो धीर नहीं होगा वह क्या खाक नायक होगा। जो धीर न होगा वह प्रेमी भी नहीं हो सकता। सुख दुख में उनका एक रस होना आवश्यक है—चले राम वन रंग न रोपू।

(१) धीरोदात्त नायक—बड़ा उदार चरित होता है। शक्ति, क्षमा, दृढ़ आत्मगौरव, विनय और निरभिमानता इस के प्रधान

गण होते हैं। श्रीराम और युधिष्टिर इस के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। उत्तर राम चरित नाटक मे चित्र दिखलाते समय लक्ष्मण जब परशुराम की ओर सकेत करते है तो वे आगे बढ़ने को कहते हैं। अपनी बड़ाई नहीं सुनना चाहते। मन्थरा और केकैयी के चित्रों को भी छोड़ देते हैं। नागानन्द नाटक (वध्यशिला) के नायक जीमूत वाहन भी धीरोदात्त ही है। उन्हें धीर प्रशान्त कहा जाना चाहिए था मगर राजा होने के कारण ऐसा नही हुआ।

(२) धीरललित—यह कोमल स्वभावका होता है। सुखान्वेषी, कलाविद् और निश्चिन्त होता है जैसे शकुन्तला नाटक के दुष्यन्त। शृङ्गार प्रधान नाटकों में ऐसे ही नायक होते हैं।

(३) धीरप्रशान्त—यह क्षत्रिय नहीं होता क्योंकि क्षत्रियों में सन्तोष नहीं पाया जाता। ऐसा नायक ब्राह्मण या वैश्य होता है। इसका स्वभाव शान्त होता है। जैसे मालती माधव में माधव। कुछ कुछ इस में ललित के भी लक्षण होते हैं।

(४) धीरोद्धत—यह मायावी, आत्मश्लाघी, प्रचण्ड और चपल होता है। अहकार और दर्प की साक्षात् मूर्ति होता है। भीमसेन और मेघनाद इस के उदाहरण हैं।

शृङ्गार रस के सम्बन्ध से नायकों के चार भेद और हैं—

अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, शठ।

अनुकूल नायक एक पत्नी व्रत होता है। जैसे श्री राम, जिन्होंने अश्वमेधयज्ञ में भी सीता की सोने की मूर्ति बनाकर काम चलाया था।

दक्षिण नायक कई स्त्रियाँ रखता हुआ प्रधान महिषी से विशेष प्रेम करता है वह अपनी कुशलता से सब को प्रसन्न रखता है। और प्रधान महिषी से अन्य स्त्रियों के प्रेम को छुपाए रखता है।

इस को अधिक महत्व देते आए है। उन रसों में भी शृंगार, वीर और करुण का बोल बाला रहा है। इन रसों के लिए धीर, उदार और वीर नायकों की ही आवश्यकता रहती है, और वे आरम्भ से दर्शकों को इस शुद्ध चरित्र के सम्पर्क में लाना चाहते हैं। नाटक में नायक को नए गुण तो प्राप्त होते नहीं पहले से मौजूद गुणों का प्रकाशन होता है। चन्द्रमा तो क्षीण हो २ कर पूर्ण होता है। कमल भी संकुचित होकर विकसित होता है मगर नायक में यह क्षीणता, संकुचितत्व नहीं आते। नायक मे पहले बुराई दिखलाकर दर्शकों के हृदयों पर आघात पहुँचाना हमारे यहाँ के नाटककारों ने नहीं सीखा।

चरित्र परिर्वन की गुञ्जाइश होती भी है:—मरते समय बालि की भावना क्या शुद्ध नहीं हो गई थी? वाल्मीकि क्या दस्यु से ऋषिराज नहीं बनाए थे? दुर्योधन क्या अपने किए पर नहीं पछताया?

प्र०—नायकों के प्रकारों का सलक्षण दिग्दर्शन कराओ, प्रतिनायक और पीठमर्द किसे कहते हैं? विदूषक का नाटक में क्या महत्व है?

उ०—नायक चार प्रकार के माने गए है।

(१) धीरोदात्त, (२) धीरललित, (३) धीर प्रशान्त, (४) धीरोद्धत।

नायक सभी उदार श्रेष्ट होते थे इसी लिए सब के आदि में धीर जोड़ा हुआ है। जो धीर नहीं होगा वह क्या ख़ाक नायक होगा। जो धीर न होगा वह प्रेमी भी नहीं हो सकता। सुख दुख में उनका एक रस होना आवश्यक है—चले राम बन रंग न रोपू।

(१) धीरोदात्त नायक—बड़ा उदार चरित होता है। शक्ति, क्षमा, दृढ़ आत्मगौरव, विनय और निरभिमानता इस के प्रधान

गण होते हैं। श्रीराम और युधिष्टिर इस के श्रेष्ट उदाहरण हैं। उत्तर राम चरित नाटक में चित्र दिखलाते समय लक्ष्मण जब परशुराम की ओर सकेत करते है तो वे आगे बढ़ने को कहते हैं। अपनी बड़ाई नहीं सुनना चाहते। मन्थरा और केकैयी के चित्रों को भी छोड़ देते हैं। नागानन्द नाटक (वध्यशिला) के नायक जीमूत वाहन भी धीरोदात्त ही है। उन्हें धीर प्रशान्त कहा जाना चाहिए था मगर राजा होने के कारण ऐसा नही हुआ।

(२) धीरललित—यह कोमल स्वभावका होता है। सुखान्वेषी, कलाविद् और निश्चिन्त होता है जैसे शकुन्तला नाटक के दुष्यन्त। शृङ्गार प्रधान नाटकों में ऐसे ही नायक होते हैं।

(३) धीरप्रशान्त—यह क्षत्रिय नहीं होता क्योंकि क्षत्रियों में सन्तोष नहीं पाया जाता। ऐसा नायक ब्राह्मण या वैश्य होता है। इसका स्वभाव शान्त होता है। जैसे मालती माधव में माधव। कुछ कुछ इस में ललित के भी लक्षण होते हैं।

(४) धीरोद्धत—यह मायावी, आत्मश्लाघी, प्रचण्ड और चपल होता है। अहकार और दर्प की साक्षात् मूर्ति होता है। भीमसेन और मेघनाद इस के उदाहरण हैं।

शृङ्गार रस के सम्बन्ध से नायकों के चार भेद और हैं—

अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, शठ।

अनुकूल नायक एक पत्नी व्रत होता है। जैसे श्री राम, जिन्होंने अश्वमेधयज्ञ में भी सीता की सोने की मूर्ति बनाकर काम चलाया था।

दक्षिण नायक कई स्त्रियाँ रखता हुआ प्रधान महिषी से विशेष प्रेम करता है वह अपनी कुशलता से सब को प्रसन्न रखता है। और प्रधान महिषा से अन्य स्त्रियों के प्रेम को छुपाए रखता है।

शठ नायक का प्रेम अन्तरिन्द्रियों पर प्रकट सा रहता है। किन्तु वह निर्लज्ज (बेशर्म) नहीं होता।

धृष्ट नायक बेहया—बेशर्म होता है। प्रधान महिषी को जी भर कर कोसता और तंग करता है। उसके तिरस्कार में कोई कसर नहीं उठा रखता।

नायक का प्रतिद्वन्द्वी प्रतिनायक कहलाता है।

प्रासंगिक कथा वस्तु का नायक, नेताका; सहायक पीठमर्द कहलाता है।

संस्कृत नाटकों में हास्य का सारा तत्व जिस एक पात्र में केन्द्रित कर दिया जाता था उसे विदूषक कहते थे। अंग्रेजी नाटकों में क्लाउन इसी का अनुकरण है। विदूषक प्राय: ब्राह्मण और पेटू होता था। भूख उसे खूब सताती थी स्कन्दगुप्त (प्रसाद जी कृत में मुद्गल भी भोजन भट्ट है। विदूषक राजा का सलाहकार और विश्वास पात्र होता है। शायद इसीलिए ब्राह्मण होता था क्योंकि ब्राह्मण ही उस युग में मन्त्री होते थे। अन्त: पुर में उसकी गति होती थी। राजा उसे मित्र कहकर सम्बोधित किया करता।

प्र०—रस क्या है? काव्य में उसका क्या महत्व है?

'मधुराम्ल लवण कटुकषाय तिक्त' इन लौकिक रसों से यहां तात्पर्य नहीं है और न ही "आज हरि कथा सुनने में रस आवा" यह रस ही यहां अभि प्रेत है इसका संक्षिप्त लक्षण यह है—जब स्थायिभाव, विभाव, अनुभाव और सचारि भावों से पुष्ट हो कर अपनी परिपक्कावस्था को पहुँचता है, तब उसके अस्वादन से सहृदयजनों के हृदय में आनन्दानुभूति होती है उसे रस कहते हैं।

जब सहृदयजनों के हृदयों में रस की जागृति होती है तब उन्हें आत्म-पर का कोई ज्ञान नहीं रहता। आनन्द विह्वल होकर बाह्य सभी वस्तुओं की ओर से उनकी इन्द्रियां पराङ्मुख हो जाती हैं।।

सात्विकभाव कई रसों का अङ्ग हो सकता है। शायद इस उ
उधर की लुकाचोरी से ही इसे व्यभिचारिभाव कहते हैं। ग
हर्ष सञ्चारिभाव शृङ्गार, वीर अद्भुत, हास्य, में हो सकता है
सञ्चारिभाव ३३ हैं।

अनुभाव:—आभ्यन्तरिक भावो को सूचित करने वाले जे
अङ्ग विकार होते हैं वे अनुभाव कहलाते हैं। जैसे शृङ्गार मे-
चुम्बन, स्पर्शन, भ्रू विक्षेप, आलिङ्गन, कटाक्ष (प्रेम भरी दृष्टि
देखना) आदि। ये चेष्टाएं आश्रय की होती हैं। आलम्बन की
चेष्टाएं उद्दीपन कहलाती हैं। अनुभावों को संख्याओं से सीमि
नहीं किया जा सकता।

सात्विक भाव:—जो मनोविकार बाहरी अङ्गों से वह पड
हैं वे सात्विक भाव कहाते हैं। ये कृत्रिम नहीं होते, भावावेश
इन की उत्पत्ति स्वत: हो जाती है। ये गिनती में आठ हैं:—
(पसीना), स्तम्भ (एक दम निश्चेष्ट होना), रोमाञ्च (रोंगटे
होना) स्वरभङ्ग (आवाज लड़खड़ा जाना), वेपथु (कांपना
वैवर्ण्य (रङ्ग फीका पड़ना (अश्रु, प्रलय (मूर्च्छा)।

**प्र०—रस कितने हैं? भरतमुनि ने मुख्य रसों
गोणरसा की उत्पत्ति कैसे मानी है? निर्वेद स्थायिभ
और सञ्चारिभाव कैसे हैं?**

रस नौ हैं—शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भया
अद्भुत, वीभत्स और शान्त। कोई ,२, वात्सल्य भी मानता
भरतमुनि ने शान्त का अभिनय न हो सकने के कारण इसे
माना। उन्होंने (१) शृगार (२) वीर (३) वीभत्स (४) रौद्र
चार रसों को ही मुख्य माना है। शृङ्गार से हास्य, वीर से अद
वीभत्स से भयानक, और रौद्र से करुण की उत्पति मानी है

निर्वेद दो हैं—एक तो वह जो लौकिक निराशाओं से उत्पन्न होता है। दूसरा वह जो तत्व ज्ञान से। पहला सचारि भाव है और दूसरा स्थायिभाव।

प्र०—जब रस आनन्द-मय है और ब्रह्मानन्द सहोदर है, बाह्यज्ञान उसमें रहता नहीं, तो यह रस भेद कैसा ?

उ०—रस की निष्पत्ति स्थायिभाव, विभाव, अनुभाव सचारि-भावों से माना हैं। इनके सम्मिश्रण से एक मिक्चर तैयार होता है। वह वड़ा स्वादू होता है। उसका आनन्द अलौकिक होते हुए भी भेद रखता है। ठढाई (सरदाई) का स्वाद वड़ा मजेदार होता है। जिस समय हम पीते हैं आनन्द विहल को पाते हैं। वाद में जैसे मिर्चों की अधिकता हम झट कह देते हैं कि इसमें ज्यादा मिर्चें डाल दी या और किसी चीनी आदि के प्राचुर्य से तत्क्षण अरुचि हो जाते हैं वैसे ही रसास्वादन के पश्चात् आनन्दानुभव होने पर किसी स्थाई भाव की उत्कटता पर झट रस भेद हो जाता है। जो जो स्थायिभाव उत्कटता पर प्रयीयमान होगा उसी के अनुसार नाम भेद हो जायगा। मगर आनन्दनुभूति के समय यह लक्षित नहीं किया जाता। मिर्चों का चरपरापन वादमे ही प्रतीत होता है। सरदाई जैसे मिर्चों के चरपरेपन को साथ लिए हुए होती है रस भी अमुकामुक स्थायिभाव के उद्रेक को साथ लिए होता है।

प्र०—रस आनन्द मय है। करुण रौद्र, भयानक, वीभत्स में सुखानुभव नहीं तो रसत्व कैसा ? ये चारों तो दुःखानुभवोत्पादक हैं !

उ०—ध्यान रहे रस अलौकिकानन्द प्रद है अतः लौकिक अनुभव और काव्यानुभव मे आकाश पाताल का अन्तर है। लौकिक

अनुभव में व्यक्ति के व्यक्तित्व की सीमा रहती है। हमारे लौकि अनुभव देश काल सम्बन्धित होते हैं। जब वे काव्य का विष बनते हैं उस समय उनमें व्यक्ति के व्यक्तित्व का और देशका सम्बन्धी घटनाओं का बन्धन नहीं रहता। कवि के लिए क और तीव्र अनुभवों की भावना मात्र रहती है। काव्य का आल म्बन हमारा आलम्बन बन जाता है और आश्रय के साथ निजन का सम्बन्ध जुड़ जाता है। मगर यह वैयक्तिक नहीं। हम व्यक्ति गत नाते से नहीं बल्कि मानवता के नाते से सम्बन्ध रखते हैं"

अरस्तु साहब का कहना है कि जिस प्रकार वैद्य हम शरीर के मलों को निकाल कर शुद्ध कर देता है वैसे ही हम मनों में करुणा, भय, ग्लानि और क्रोध की मात्रा जो इकट्ठी जाती है वह ऐसे रसानुभवों से रिक्त हो जाती है। इससे ह सुख ही होता है, दुख नहीं। नहीं यह इनकी गलती है। हम भावों को निकालना नहीं उपभोग करना चाहते हैं। ऐसे नाट के देखने में हमारी आत्मा का विस्तार होता है। शेष सृष्टि साथ रागात्मक सम्बन्ध में आते हैं। नाटक देखने या उपन्या पढ़ने से हमारे सामाजिक भावों की तृप्ति होती है। उसके पा से हमारा दूषित सम्बन्ध नहीं होता। उनके साथ कोई ज जायदाद सम्बन्धी झगड़ा नहीं होता। मात्सर्य न होने कारण उनके वैभव से भी जलन उत्पन्न नही होती। के पड़ोसी के महल को देख कर हमें दुःख होता है दुनियाँ के मह को देख कर नहीं। हम न पात्रों के दुख से दुखी और न सुख से सुखी होते हैं। पात्रों के साथ हमारा निजी सम्बन्ध न होता, मानवता का सम्बन्ध होता है। पात्र हमारे कुछ न लगते। रोहिताश्व मर गया, शैव्या रोती है, हमारी बला शैव्या हमारी मौसी तो है नहीं जो उसके साथ मिल कर दुःख उठाय, सिर पैर पीटें। आंसू हमारे भी आते हैं—

दुःख के आँसू नहीं रसानुभूति के, सुख के हैं। भला पैसे देकर रोने कौन जायगा ? वास्तविक दुःख का कारण निजीपन है। इस में अपने पराये का ज्ञान नही रहता फिर दुःख कैसा ? इस से दुःखानुभव नहीं होता, यह तो आनन्दप्रद है। दुःख हुआ होगा शैव्या हरिश्चन्द्र को। सो तो पृथ्वी पर भी नहीं है। नट नटी का भी यह अपना दुःख नहीं, दुःख की नकल है। साक्षात् रोहिताश्व की माता शैव्या को रोता देखते तो सुखानुभव नहीं होता।

यही प्रश्न दुखान्त नाटकों पर भी हो सकता है। पात्रों के साथ हमारा सहानुभूति सम्बन्ध होता है। सहानुभूति से हमारी आत्मा को विस्तार मिलता है। आत्म का विस्तार ही सुख है।

प्र०—जब दुःखान्त नाटकों से सहानुभूति की मात्रा बढ़ती है तो संस्कृत नाटकों में दुःखान्त नाटकों का अभाव क्यों है ?

उ०—बात सही है, केवल उरुभंग नाटक दुखान्त है। उसे भी दुःखान्त नहीं कह सकते, क्योंकि दुर्योधन की मृत्यु से किसी को दुःख नहीं होता। उत्तर यह है—

भारतीय नाटकों में मृत्यु आदि दृश्य वर्ज्य माने गये हैं। करुणा रस-वि जय आदि भय से लौकिक अनुभव होता है जो असली आनन्द में बाधक होता है। सच्ची बात तो यह है कि सहानुभूति को कृत्रिम रूप से जागृत करने से उसकी तीव्रता कम हो जाती है। लोगों को दुखी देखते २ उन्हें दुःख में देखने की आदत सी पड़ जाती है। और मन में वही मनोवृत्ति उत्पन्न होती है जो किसी फांसी के हुक्म वाले कैदी को शेर से लड़ कर मरते देखने में होती है। भारतीय जीवन का आदर करते आए हैं मनुष्यों को रङ्गमञ्च पर गाजर मूली की भांति काटा जाना

पसन्द नहीं करते। जब तक किसी बड़े आदमी को दुःख में पड़ा न देखें तब तक सहानुभूति और करुणा उत्पन्न नहीं होती। सत्य-वादी हरिश्चन्द्र सत्यसन्ध दशरथ जैसों को दुःखाक्रान्त देखते है तो करुणा की नदी बह निकलती है, किन्तु ऐसे दृश्यों से ईश्वरीय न्याय सम्बन्धिनी भावना को आघात पहुंचता है। राम को वन जाते देख घातक दैव को कोसते हैं। नाटककार ऐसा चाहते नहीं थे। एक ओर दुःखान्त नाटकों द्वारा भावों की परिशुद्धि और संस्कार का सवाल दूसरा ओर ईश्वरीय न्याय रक्षा का निर्वाह, इस उभयतः गलबन्धी पाश से बचने के लिये ही संस्कृत में दुःखान्त नाटकों का अभाव है। उत्तर राम चरित को करुणा-प्लावित होते हुए भी इसी गर्ज से सुखान्त कर दिया है। "सत्य हरिश्चन्द्र" में भी विश्वामित्र का पश्चाताप सत्य की विजय का सूचक है।

प्र०—अभिनय किसे कहते हैं? इसके भेदों की भाव बोधिनी व्याख्या करो?

यह शब्द अभिपूर्वक 'णीञ्' धातु से बना है। णीञ् धातु का अर्थ है पहुंचाना। इसके द्वारा नाटक की सामग्री अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति की ओर पहुंचाई जाती है। अभिनय नाटक का प्रधान अङ्ग है। अभिनय ही से नाटकों का उदय हुआ है। इसी की उन्नति के साथ २ भिन्न २ देशों में नाट्यकला का विकास हुआ है।

इसके चार भेद हैं—आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक।

आङ्गिक के भी—शरीर, मुख और चेष्टा कृत तीन भेद हैं। आङ्गिक अभिनयों का परिस्थिति के अनुकूल गतियों से सम्बन्ध है। रसानुसार दृष्टियाँ भी भिन्न २ प्रकार की होती हैं। तैरना घोड़े आदि की सवारी भी इसी में हैं। इस में स्वाभाविकता लाने के लिये प्राकृत आजकल गंवारु) भाषा का प्रयोग कराया है।

प्राचीन समय में भिन्न २ श्रेणी के लोग भिन्न प्रकार से सम्बोधित किये जाते थे। नौकर लोग राजा को देव कहते थे। बौद्धों को भदन्त कहा जाता था। ऋषि राजा को राजन कह कर पुकारते थे। विदूषक राजा को वयस्यक, रानी से भवती कहते थे। हमारे यहाँ कथोपकथन को अलग तत्व नहीं माना इस का सब निर्देश वाचिक अभिनय से हो जाता है।

आहार्य अभिनय में नाना रीति के आभूषण, वस्त्र और रंगों का उल्लेख है। भिन्न २ स्थिति के लोगों के बालों, मूछों का भी सजावट का विधान है। विदूषक राजा और बच्चों की तीन चोटियां होती थीं। स्त्रियों के घुंघराले बाल, मुकुट आदि भी रहते थे।

सात्विक अभिनय—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च आदि द्वारा अवस्थानुकरण का नाम सात्विक अभिनय है। इस अभिनय में सात्विक भावों की प्रधानता है।

प्र०—वृत्ति किसे कहते हैं, सलक्षण भेदों का दिग्दर्शन कराओ।

उ०—नाटकीय तत्वों के साथ उनकी शैलियों का भी वर्णन आता है। इनका सम्बन्ध पूरे नाटक से रहता है। इन्हें नाट्य-मातरः, नाट्य की माताएं कहा है। इनका सम्बन्ध पात्रों के चलने फिरने के ढङ्ग से है। ये चार हैं—

१—कैशिकी, २—सात्वती, ३—आरभटी, ४—भारतीय।

कैशिकी वृत्ति—यह मनोहर वृत्ति है। इसका श्रृङ्गार और हास्य से सम्बन्ध है। गीत नृत्य की इस में अधिकता रहती है गान को मुख्यता देखकर इस की उत्पत्ति सामवेद से मानी जाती है।

२—सात्यवती—इस वृत्ति का सम्बन्ध शौर्य, दया, दान, दाक्षिण्य मे है। इस में वीरोचित कार्य रहते हैं। उत्साह वर्द्धिनी भाव भङ्गी की प्रधानता रहती है। वीर रस से इस का विशेष सम्बन्ध है, रौद्र और अद्भुत का भी समावेश होता है। यजुर्वेद से इसकी उत्पति मानी जाती है।

३—आरभटी—इस वृत्ति की उत्पत्ति अथर्ववेद से मानी जाती है। माया जाल, छल अपंच, संग्राम, कोप, सवर्प, घात प्रतिघातु, बन्धन आदि से सम्न्वित यह वृति रौद्र रस में काम आती है।

४—भारती वृत्ति—इस में स्त्रियों का निषेध रहता है। पुरुष नटों से इस का सम्बन्ध है। सब रसों मे काम आती है। भरतमुनि करुण और अद्भुत रस से इस का सम्बन्ध मानते हैं। भारतेन्दू जी के मन से केवल वीभत्स मे ही इस का उपयोग है। ऋग्वेद से इसकी उत्पत्ति मानी गई है।

प्र०रूपक और उपरूपक में क्या अन्तर है?

उ०—रूपक में रस की प्रधानता रहती है और उपरूपक मे भावों, नृत्य और नृत्त की मुख्यता रहती है। नृत में परिमित समय और ताल के साथ पद संचालन होता है, नृत्य मे भाव-प्रदर्शन भी होता है।

प्र—रूपक के कितने भेद हैं विस्तृत विवरण के साथ स्पष्ट करो। उपरूपक के भेदों का भी नाम निर्देश करो।

उ०—रूपक के दस भेद हैं:—

(१) नाटक (२) प्रकरण (३) अङ्क (४) व्यायोग (५) भाण (६) समवकार (७) वीथी (८) प्रहसन (९) डिम (१०) ईहामृग।

(१) नाटक—यह रूपकों में मुख्य है। इसकी कथावस्तु में पाँच सन्धियां, चार वृत्तियां, और चौंसठ सन्ध्यङ्ग माने गए हैं। पांच से दश तक अङ्क होते है। इसका विषय कल्पि नहीं होता। इसका नायक धीरोदात्त, प्रतापी होना चाहिए। वह राजा हो, राजर्षि हो या कोई अवतारी पुरुष हो। इस में शृङ्गार वीर या करुण रस की प्रधानता होती है। जैसे—शकुन्तला।

नोट—आज कल के नाटक इस परिभाषा की कसौटी पर ठीक नहीं उतरते।

(२) प्रकरण—इस में प्राय: नाटक की सी वस्तु होती है। अन्तर केवल इतना है कि इसका विषय कल्पित होता है। शृङ्गार रस की प्रधानता होती है। इसका नायक कोई मन्त्री, धनी या ब्राह्मण होता है। जैसे—मालती माधव, मृच्छकटिक।

(३) अङ्क—इस में एक ही अङ्क होता है। यह करुण रस प्रधान होता है। नायक गुणी और आख्यान पसिद्ध होता है इस में मुख और निर्वहण सन्धियां ही होती हैं। जैसे शर्मिष्ठाययाति।

(४) व्यायोग इस में एक ही अङ्क होता है। और एक ही अङ्क की कथा होती है। स्त्रीपात्र का अभाव सा रहता है। वीर रस की प्रधानता होती है। मुख, प्रतिमुख और निर्वहण सन्धियां होती हैं। जैसे भारतेन्दु कृत धनञ्जय विजय।

(५) भाण—इस में भी एक ही अङ्क होता है। एक ही पात्र होता है जो ऊपर को मुख उठा कर आकाश भाषित के ढङ्ग से

किसी कल्पित पात्र से बात चीत करता है। इस में धूर्तों का चरित्र होता है, खूब हंसी होती है। जैसे—विषस्यविषमौषधम।

(६) समवकार—इस में १२ तक नायक हो सकते हैं। सब को अलग २ फल मिलता है देव या दानवो की कथा रहती है, केवल तीन अङ्क होते हैं। विमर्श-सन्धि और विन्दु नाम की अर्थ प्रकृति नहीं होती। इस में युद्ध दिखाए जाते हैं।

नाट्य शास्त्र में उल्लिखित अमृतमन्थन इसका उदाहरण है। भास का पञ्चरात्र भी इसके निकट है।

(७) वीथी—भाण की भांति इस में एक अङ्क होता है। विषय कल्पित होता है। शृङ्गार और वीर रस की प्रधानता होती है जैसे—लीला मधुकर।

(८) प्रहसन—इस में हास्य रस की प्रधानता रहती है। एक ही अङ्क होता है, मुख और निर्वहण सन्धियां होती हैं। जैसे—अन्धेर नगरी, वैदिकी हिंसा न भवति। आज के एकाङ्की प्रहसन इस परिभाषा पर ठीक उतरते हैं।

(९) डिम—इस के चार अङ्क और १६ नायक होते हैं। रौद्र रस की प्रधानता रहती है। नायक देवता, दैत्य या अवतार होते हैं और जादू तथा मायाजाल रहता है। शृङ्गार और हास्य रस वर्जित होते हैं। जैसे-संस्कृत में त्रिपुर दाह नाटक।

(१०) ईहामृग—इसमें धीरोदात्त नायक और एक प्रतिनायक होता है। नायक किसी कुमारी की चाह करता है किन्तु वह मृग की भांति दुष्प्राप्य हो जाती है—दूर दूर रहती है। प्रतिनायक उसे नायक से छीनना चाहता है, युद्ध होता है। न मिलन होता है और न ही मृत्यु, नायक आजीवन तड़पता है। इस में चार अङ्क होते हैं। उदाहरण कोई नहीं।

उपरूपक के अठारह भेद हैं :—

[१] नाटिक [२] त्रोटक [३] गोष्ठी [४] सट्टक [५] नाट्य-रासक [६] प्रस्थानक [७] उल्लाप्य [८] काव्य [९] प्रेङ्खणक [१०] रासक [११] संलपक [१२] श्रीगदित [१३] शिल्पक [१४] विलासिका [१५] दूमिल्लिका [१६] प्रकरणिका [१७] हल्लीश [१८] भाणिका।

नोट—आजकल इन भेदों का कोई उपयोग नहीं आजकल के नाटकों मे केवल विषय भेद रहता है। ऐतिहासिक, पौराणिक सामाजिक, दुखान्त, सुखान्त भेद माने जाते हैं। यथार्थ वाद और आदर्शवाद का भी भेद होता है। वस्तु प्रधान और भाव प्रधान भी हो सकते है।

प्र०—प्राचीन रंग मच के विषय में तुम्हारे क्या विचार हैं ? उसके कितने भेद होते थे ? अभिनय का प्रकार क्या था ?

नाटक रङ्गमञ्च के लिए ही बनते थे। कुछ लोगों का कथन है कि उत्तर राम चरित, अनर्घराघव जैसे क्लिष्ट नाटक रङ्गमञ्च पर खेले जाने के लिए नहीं बने, वे तो कक्षस्थमञ्चिका (कुर्सी) पर रखे २ पढ़ने के होते थे। नहीं, अभिनेय होने मे ही नाटकों की सार्थकता है। उन की प्रस्तावना से रङ्गमञ्च पर खेला जाना सिद्ध होता है।

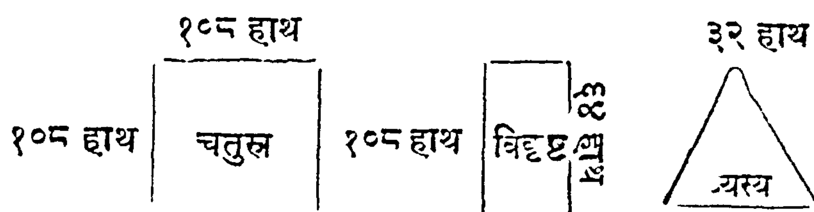
नाट्य शास्त्र में रङ्गमञ्च का पूरा २ ध्यान रखा है। भरत मुनि ने तीन प्रकार की नाट्य शालाओं का उल्लेख किया है।

(१) चतुस्र-जिसकी लम्बाई चौड़ाई बराबर होती थी।
(२) विकृष्ट-जिनकी लम्बाई चौड़ाई से दुगनी होती थी।

[३] व्यस्य—यह त्रिकोण होती थी।

विकृष्ट ही अच्छी मानी जाती थी। चतुस्र देवताओं के लिए होती थी। विकष्ट मनुष्य के लिए और व्यस्य घरेलू सीमित दर्शकों के लिए।

तीनों के आकार निम्न निर्दिष्ट होते थे :—



हम यहां विकृष्ट को अभिनेय भागों में बाँट कर अभिनय का प्रकार बतलाते हैं—

नाट्यशाला में दो सम भाग रहते थे। पीछे का 'क' भाग अभिनय के लिए और आगे का 'ख' भाग दर्शकों के लिए होता था। पिछले भाग के दो भाग और किए जाते थे। सबसे पिछला भाग नेपथ्य कहलाता था। इस में नट लोग अपनी वेश भूषा सजाते थे। कोई कोलाहल या जनरव सुनाना होता तो इसी से (नेपथ्ये या नेपथ्य में) सकेत से सुनाया जाता था। नेपथ्यगृह से अगले भाग के भी दो भाग होते थे। नेपथ्य के निकट वाले भाग को रङ्गशीर्ष और रङ्गपीठ के बीच में जवनिक (पर्दा) रहती थी। रङ्गशीर्ष में चित्रपट होते थे। इसी में प्रारम्भिक पूजा नान्दी आदि होती थी। वास्तविक अभिनय रंगशीर्ष में दिखाया जाता था। रङ्गपीठ में दृश्य बदलने के समय के ऊपरी कृत्य होते थे। नाच वगैरा भी इसी में होता था। सूत्रधार अपनी प्रारम्भिक सूचना यहीं से देता था।

अगले 'ख' भाग में सोपानाकार वैठकें होती थी, जो आज कल की गैलरियों से मिलती थी। भिन्न २ लोगों के लिए ये अलग २ बनी होती थी। वैठकों के बीच में रङ्गदार खम्बे होते थे जिनसे वहाँ बैठने वाले लोगों के वर्णों (ब्राह्मण क्षत्रियादि) का पता लग जाता था। इसके अतिरिक्त बांस कपडे चमड़े का भी सामान रहता था जिन से घोड़े रथा आदि का प्रदर्शन किया जाता था।

अधोनिर्दिष्ट चित्र से स्पष्ट हो जाएगा—

		नेपथ्य
क		रंगशीर्ष
जवनिका		रंगपीठ
ख	दर्शक स्थल	

प्र०—हिन्दी रंगमंच के बारे में तुम क्या जानते हो? इसके सफल न होने के कौन कौन से कारण हैं? इसे जीवित रखने के लिए किन २ लोगोंने प्रयास किया हिन्दी रङ्गमच का भविष्य कैसा प्रतीत होता है?

उ—जब हिन्दी नाटक लिखे जाने लगे थे तब उर्दू की तूती बोल रही थी। पारसी कम्पनियाँ व्यवसायिक ढङ्ग से चल रही थी। उन दिनों के लोग रग विरगे पर्दों और विशेप प्रकार के गानों पर लट्टू थे। इन्द्र सभा, गुलवकावली जैसे ही नाटक खेले जाते थे। हिन्दी नाटको के खेलने में उच्चारण और अनुकूल वातावरण की कठिनता थी। वे लोग कृष्ण को विरजिस पहना कर

खड़ाकर देते थे वेशभूषा में देशकाल का ध्यान न रखते थे। उन दिनों की और नाटक मण्डलियाँ भी पारसी नाटक मण्डलियों के आदर्श को लेकर चलती थी। कुछ २ दक्षिण में प्राचीन पद्धति स्थिर थी।

भारतेन्दु के समय में भी रङ्गमञ्च सम्बन्धी कोई सुधार न हुआ। हाँ नाटकों में साहित्यकता आ गई। प्रसाद जी के नाटक अभिनेय हुए किन्तु अच्छे अभिनेताओं की मांग पूरी न हुई। प्रसाद जी स्वय लिखते हैं—रङ्गमञ्च के लिए नाटक नहीं बनते, नाटक के लिए रङ्गमञ्च होने चाहिए।

हिन्दी रङ्गमञ्च की असफलता का हेतु यह है कि सुशिक्षित कुशल अभिनेता और सूत्रधारों की कमी है। स्त्री पात्रों को भाग नहीं दिया जाता। अभी तक कोई स्वतन्त्र रङ्गमञ्च परिपाटी नहीं बनी जिस के अनुकुल हमारे नाटकों की रचना भी हो सके। अब तक के जो नाटक है वे पारसी रङ्गमञ्च की दूषित प्रणाली का अनुकरण हैं।

आधुनिक हिन्दी रङ्गमञ्च के जनक भारतेन्दु हैं। उन्होंने अनेक नाटक लिखे और भारतेन्तु नाटक मण्डली ने उन का सफल अभिनय भी किया। इन रङ्गमञ्चों से सस्कृत परिपाटी पुनः जीवित हो गई। सत्य हरिश्चन्द से बीता युग पुन. याद आता है। भारतेन्दु जी ने हिन्दी रङ्गमञ्च को जीवन प्राप्ति दी पर यह क्षणिक रही।

दूसरा पर्याप्त व्याकुल भारत नाटक मण्डली ने किया। इस का बुद्ध देव, लोक प्रिय हुआ। इस नाटक का अभिनय शुद्ध हिन्दी में हुआ था। इस के अभिनेता शुद्ध हिन्दी का उच्चारण करते थे। भारतीय संस्कृति का ध्यान रखा जाता था।

द्विजेन्द्रलाल राय के बंगाली नाटकों का हिन्दी में अनुवाद काफी प्रचार का हेतु बना। व्यवसायी मण्डलियाँ राय जी के शाहजहाँ 'मेवाड़पतन' आदि नाटकोंका वर्षों अभिनय करती रहीं।

इसके बाद राधेश्याम बरेली वाले 'न्यूऐलफ्रे ड' नाटक मंडली के लिए 'वीर अभिमन्यु' भक्त प्रह्लाद' आदि अच्छे २ नाटक देने लगे। किन्तु इनका अभिनय वास्तविकता से योजनों पर था।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी रचित 'कृष्णार्जुनयुद्ध' इतिहास में नवीनता लाने वाला बना। इस में साहित्यिकता के साथ २ नाटकीय तत्व भी थे। इसका अभिनय पर्याप्त हुआ। बदरीनाथ भट्ट ने 'चुङ्गी की उम्मीद वारी' लिख कर हास्यमें कमालकर दिखाया।

प्रसाद जी रङ्गमञ्च में एक नया अध्याय आरम्भ कर दिया। नागयज्ञ, अजात शत्रु चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि नाटक प्राचीन इतिहास से पूर्ण और साहित्यिकता से भरे हैं। इनका अभिनय किया जा सकता है, पर रङ्गमञ्च बनाने पड़ेंगे।

पन्त जी की ज्योत्स्ना भी इसी कोटि की है, यदि हिन्दी साहित्य सम्मेलन कवि की देख रेख में इस नाटक का अभिनय करवाये तो इस से रङ्गमञ्च के विकास में काफी सहायता मिल सकती है।

और भी तरुण लेखकों के अच्छे २ नाटक निकल रहे हैं मगर स्वतन्त्र रङ्गमञ्च के बिना वे सजीव नहीं हो पाते। 'न्यू थियेटर्स' के यथार्थ वादी अभिनय का हिन्द के अभिनेताओं पर प्रभाव पड़ता जा रहा है। रेडियो ने रङ्गमञ्च को खूब प्रगति दी है। रङ्गमञ्च का विकास व्यवसायी दलों से नहीं हो सकता, साहित्यिक ही इसका उद्धार कर सकते हैं। एक नाट्य-समिति की रचना कर रवि ठाकुर और शिशिरभादुड़ी, उदयशङ्कर भट्ट

जैसों का सहयोग मांगा जाये, धन बटोर कर एक अभिनय भवन निर्माण किया जाये और उस पर अच्छे २ नाटक आमत्रित किये जायें तो रङ्गमञ्च उन्नत हो सकता है।

हिन्दी रङ्गमञ्च के भविष्य की भी कल्पना की जाती है—भारतीय जनता की अनुभूतियाँ और आशायें एक सजीव रङ्गमञ्च से केन्द्रित होंगी। और वे भारतीय जीवन के निकट भा होंगी। इसकी भाषा उन्नत होते हुए जन समाज की समझ' जा सकने वाली भाषा होगी। उसकी वाणी में आलोचना-भाव होगा। वह रङ्गमञ्च पुराने रङ्ग के वेल बूटों का 'लकीर का फकीर' न होगा। वह कितना लोकप्रिय होगा इसका अनुमान करना कठिन है। वह कालिदास की मर्यादा का प्रतिनिध होगा।

प्र०—रङ्गमञ्च से सिनेमा में क्या विशिष्टता है? उससे उन्नति की सम्भावना क्यों नहीं? क्या सिनेमा से नाट्यकला का ह्रास होता जाता है युक्तियों से प्रतिपादन करो?

उ०—सिनेमा ने जनता के मनोरञ्जन के लिये रङ्गमञ्च का स्थान ले लिया है। सिनेमा में कई सुभीते हैं जो नाटक में नहीं—

सिनेमा में कला चाहे कम हो पर वातावरण की वास्तविकता अधिक दिखाई जा सकती है रङ्गमञ्च पर लड़ती हुई रेल, गाडी डूबता हुआ जहाज दिखलाना महा कठिन है। मगर सिनेमा के लिये सब सुलभ है। हर वस्तु हस्तामलक हो जाती है। इसका लेखक कथानक में अधिक से अधिक दृश्यों का समावेश कर सकता है। किसी घटना की सूचना देने की आवश्यकता नहीं उचित वातावरण उपस्थित करने के लिये नाटक मण्डलियों को काफी तादाद में आडम्बर पूर्ण रङ्गमञ्च का सामान साथ रखना

पड़ता है जिसे स्थान २ पर घसीटते फिरते हैं, सिनेमा में यह झंझट नहीं। एक ही खेल कई स्थलों पर खेला जा सकता है। सिनेमा भवन वालों को उन वस्तुओं में से किसी एक की भी जरूरत नहीं पड़ती।

इतना होते हुए भी सिनेमा से उन्नति की सम्भावना नही। सिनेमा आखिर छाया है। वस्तु और छाया मे भेद है। सिनेमा मे दर्शकों को यह ध्यान बना रहता है कि हम छाया चित्र देख रहे हैं। वैसे तो नाटक भी वास्तविकता की नकल है पर सिनेमा उस नकल की भी नकल है । जो भूल एक बार चित्र खींचते समय रह गई वह रह ही जाती है फिर भला उससे अभिनय की उन्नति की सम्भावना कैसे की जा सकती है। एक बात यह भी है कि दर्शक लोग अभिनेताओं को प्रत्यक्ष साधुवाद नहीं दे सकते जिससे आगे अधिकाधिक उन्नति की सम्भावना की जा सके।

सिनेमा से नाट्यकला का ह्रास नहीं हो सकता। इङ्गलेण्ड, अमरीका आदि देशों में सिनेमा की चरम सीमा होते हुए भी नाटकों की कदर है। थियेटरों मे बैठने के लिये बहुत पहले ही स्थान बुकिङ्ग कराना पड़ता है। माना कि गुण ग्राहकों की कमी है फिर भी सच्चे गुण का सम्मान हुए बगैर नहीं रहता। यहां भी सिनेमा के साथ २ नाटक कम्पनियां काम कर रही हैं।

प्र०—संस्कृत नाटक रचना कब से होने लगी ? उन में उत्तम लेखक कौन हैं। इनका हिन्दी नाटकों पर क्या प्रभाव पड़ा।

जर्मनी और योरुप के अन्य विद्वानों के सम्मुख कविकुल चूडामणि कालिदास की शकुन्तला ही पहुँची , अतः वे सस्कृत

नाटकों का प्रारम्भ कालिदास से मानते हैं। कालिदास से पहले भी नाटककार हो चुके हैं। अश्वघोष भास, शूद्रक के नाम उनसे पहले मिलते हैं। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र मे भास, सौमिल्ल और कविपुत्र का उल्लेख किया है। राजेश्वर ने भी भास की ओर सकेत किया है। प्रथम तो केवल इनका नाम मात्र ही मिलता था किन्तु बीसवी शताब्दी में श्री गणपत शास्त्री ने भास के तेरह नाटकों का पता लगाया और मद्रास से उनका सम्पादन किया गया। स्वप्नवासव दत्ता, प्रतिज्ञायोगन्धरायण, बलि चरित, प्रतिमा, उरु भङ्ग उनमें मुख्य है।

भास की अपेक्षा कालिदास अपने को नवीन मानते हैं पर कवि पुराना कब कहा जाता है इसका निश्चय नहीं। तुर्फान में अश्वघोष के नाटकों के कुछ अंश मिले हैं। उनमें शारिपुत्रप्रकरण अश्वघोष का प्रमाणित हो चुका है। शूद्रक का मृच्छकटिक नाटक है। कालिदास के तीन (शकुन्तला, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय) नाटक हैं। मुद्राराक्षस विशाखादत्त का हैं, जो पांचवीं शताब्दी का माना जाता है। छठी शताब्दी मे शूद्रक ने मृच्छकटिक नाटक लिखा था। स्थाण्वीश्वर तथा कान्यकुब्ज के राजा श्री हर्ष ने रत्नावली और प्रियदर्शिका दो नाटिकाओं तथा नागानन्द नाटक की रचना की है। आठवीं शताब्दी में कालिदास की समता रखने वाले भवभूति हुए। इनके महावीर चरित उत्तर राम चरित तथा मालती माधव तीन नाटक मिलते हैं।

नवीं शताब्दी में भट्ट नारायण ने 'वेणीसहार' लिखा। इसके लगभग मुरारि ने 'अनर्घराघव' की रचना की। दसवीं सदी मे राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका, बाल रामायण और बाल भारत की रचना की। ग्यारहवीं शताब्दी में दामोदर मिश्र ने हनुमन्नाटक रचा। बारहवीं के अन्त में कृष्ण मिश्र ने

'प्रबोध चन्द्रोदय' लिखा तथा आर्य क्षेमेश्वर ने 'चण्डकौशिक' नाटक बनाया।

राजनैतिक अशान्ति और देशभाषा के विस्तार के कारण तेरहवीं सदी से नाटक रचना बन्द हो गई।

यद्यपि भूवभति कम नहीं हैं पर कालीदास ही की नाटकारों में अधिक ख्याति है।

संस्कृत नाटकों से हिन्दी को बहुत विकाश मिला। अधिकांश नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हुआ। सच पूछिए तो हिन्दी में नाटकों का आरम्भ सस्कृत नाटकों के अनुवाद से ही है। हिन्दी नाटकों का जन्म सस्कृत नाटकों से ही हुआ।

नोट—इस प्रश्न को भारतीय नाट्यकला की प्राचीनता वाले पिछले प्रश्न से मिलाकर याद करो।

प्र०—यूनानी नाटकों का विकास कैसे हुआ? रोम के नाटकों का प्रादुर्भाव कैसे माना जाता है? योरुप के नाटकों पर टिप्पणि लिखो।

उ०—अन्य प्राचीन देशों की भांति धर्म की प्रधानता के कारण ही यूनानी नाटक का उदय धार्मिक नृत्य और गीतों से ही हुआ ऐसे गीत डाइयोनिसस को प्रसन्न करने के लिये वर्षा आरम्भ में गाये जाते थे। ये गीत गाम्भीर्य-पूर्ण होते थे और बकरी की खाल ओढ़ कर गाये जाते थे। इसी लिये इनसे उद्भुत नाटक ट्रेजेडी कहे जाते थे। ट्रेजेडी शब्द यूनानी ट्रेगोस (बकरा शब्द से बना है। ऐसे नाटक सभी दुःखान्त न होते हुये भी करुणा की भावना की प्रधानता से गाम्भार्य-पूर्ण होते थे।

शनैः शनैः इनमें घोर भयानक घटनाओं के समावेश की प्रचुरता बढ़ने लगी। चूंकि मृत्यु से बढ़ कर गाम्भीर्य-वर्द्धक और कोई वस्तु होती नहीं। अतः ट्रेजेडी का मृत्यु से सम्बन्ध जुड़ गया। ईस्किलस (Aeschylcs), सोफोक्लीज (Sofhocles), यूरीपिडज (Eur.pedes) यूनानी दुःखान्त नाटककारों मे मुख्य हैं।

यूनानी नाटकों में सामूहिक गान कोरस (Charas) की प्रधानता थी। जव यह बीच मे आता था दृश्य-विभाग वन जाता था। ये नाटक चेहरे (बनावटी मुखौटे) लगा कर खेले जाते थे और अभिनेता लम्बे दीख पड़ने के लिये ऊंची एडी के जूते पहनते थे। ये जूते बस्किन कहे जाते थे।

चेहरे स्वाभाविकता के लिये प्रयुक्त किये जाते थे मगर इनसे वास्तविक भाव प्रदर्शन नहीं हो सकता था। नाट्यगृहों की विशालता से भी अभिनय कौशल दिखाया जाना दुष्कर था।

यद्यपि यूनान के हास्य नाटकों का उदय भी डायोनिसस की ही पूजा से हुआ था तथापि उसमें स्वांगधारी व्यक्तियों ने हंसी की प्रचुरता के लिये और मन खुश करने के लिये अश्लीलता का समावेश कर दिया। हमारे यहाँ की होली की तरह विशेष २ अवसरों पर लोग पुरुष की जननेन्द्रियां (लिंग) बना कर उसका पूजन करते और बाजारों से उसका जलूस निकालते। जननेन्द्रिय की प्रशसा के भद्दे भद्दे गीत बनाकर भावभङ्गि प्रदर्शित करते हुए नाच २ कूद २ कर गाते। ये गीत हास्य-पूर्ण होते थे। धीरे २ इनमें अश्लीलता कम होने लगी। राज्य कर्मचारी लोगों का ऐसे जलूसों से मजाक उड़ाया जाता था। ये नाटक तत्कालीन जीवन की खूब आलोचना करते थे। मिनेन्डर हास्य नाटककारों में श्रेष्ठ हैं।

जव यूनानी सभ्यता समाप्त हो गई और रोम वालों ने उसे

हड़प लिया तो विजेता होते हुए भी रोम वाले यूनानियों से प्रभावित हो गये। रोम में भी हास्य नाटकों की नकल की जाने लगी। इसके लिखने में रोम को अधिक सफलता मिली। सख्या भी अधिक रही। करुण प्रधान नाटक तो केवल एक ही मिलता है जिसका नाम है सिनेका (Seneca)।

रोम में भी अभिनेताओं के दास होने के कारण भिनयकला की विशेष उन्नति न हुई। ईगाइयों का वोलवाला होने के कारण भी वहां नाटकों का ह्रास होने लगा।

रोम के नाटकों में ही सारा यूरोप प्रभावित हुआ। रामलीलाओं की भांति योरुप मे अधिकतर धार्मिक ही नाटक होते थे। ऐसे नाटक ईसामसीह की जीवनी से सम्बन्ध रखते थे। इसके वाद नीति प्रधान नाटकों का उदय हुआ। ये नाटक रूपक और अन्योक्ति प्रधान होते थे। धैर्य, करुणा आदि अभूर्त भावनाओं को पात्र वना दिया जाता था। आजकल जो नाटक देखे जाते हैं वे पादरियों के घोर विरोध से नाट्य ह्रास होने के वाद के हैं। अव इनमे प्रेम भरी कथा वस्तु की प्रधानता होने लगी। इनमे प्राचीन नियमों की उपेक्षा होने लगी।

प्र०—संकलनत्रय से क्या मतलव है? ऐसा क्यों होता था उस में परिवर्तन क्यों हुआ? आजकल वैसा न होने के क्या कारण हैं?

उ०—यूनानी नाटकों के कुछ प्राचीन नियम थे उनमें से विशेष २ तीन नियम सकलनत्रय कहलाते हैं। वे तीन विशेष नियम थे—स्थल, समय और कार्य की एकता।

स्थल—जो घटना नाटक में दिखाई जाए उसका सम्वन्ध एक ही स्थान से होना चाहिये। एक दृश्य पेशावर का और

दूसरा कलकत्ते का ऐसा ठीक नहीं । बस यही स्थल की एकता कही जाती थी।

समय—जो घटना नाटक में दिखाई जाये वह उतने ही समय की होनी चाहिये जितना समय नाटक के अभिनय में लगता है। इसी को यूनान वाले समय की एकता कहते थे।

कार्य—कथावस्तु एक रस होनी चाहिये। इस एक रसता को निभाने के लिये प्रासङ्गिक कथाओं को स्थान नहीं दिया जाता था। इस नियम का कार्य की एकता कहा जाता था।

यूनानी नाटकों में दृश्य नहीं होते थे । कोरस (सामूहिक गान) से दृश्य विभाजन माना जाता था। उनके पर्दों पर स्थान परिवर्तन न होता था इसी लिये स्थान ली एकता मानते थे। आजकल की भांति यूनानी नाटक तीन चार घण्टे में नहीं होते थे। सारा २ दिन अभिनय किया जाता था। अतः वे समय की एकता पर विश्वास रखते थे। कार्य की एकता वैसे तो नाटक को उच्छङ्खलताओं से बचाती है किन्तु यूनान वालों ने इसे पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था। वे रङ्गमञ्च और वास्तविक घटनाओं में भेद नहीं होने देना चाहते थे।

नियम परिस्थियों के अनुकूल बनते हैं इस लिये प्राचीन नियमों में परिस्थिति-परिवर्तन होने से परिवर्तन आवश्यक था। जब परिस्थिति बदल जाती है तो पहले नियमों को नियम होने के रौब से ग्राह्य नहीं माना जा सकता। बुद्धि विकानुसार उन में काट छांट कर ली जाती है।

आजकल वैसा न होने के कारण—कला अनुकरण मात्र नहीं है उस में चुनाव भी होता है । घटनाओं को व्यवास्थित रूप में रखना पड़ता है। किसी घटना से पहले की बातें बत-

लानी पड़ती हैं। भला वे पूर्व की सारी घटनायें एक ही स्थल में किस तरह घटित हो सकती हैं। जब मनुष्य के सम्बन्ध का जाल दूब की नाल की भांति फैला रहता है तो स्थल की एकता का निभाना महा कठिन है। संस्कृत नाटकों में भी स्थलैक्य की परवाह न की गई थी। इसका यह आशय नहीं कि एक ही दृश्य में देहली और बर्लिन को ठून्स दिया जाये।

समय की एकता का भी निभाना साध्य नही। १८ वर्ष पश्चात् वाल्मीकि आश्रम मे राम किस प्रकार सीता से मिलाये जा सकेंगे, एक दिन में तो यह सब कुछ हुआ नहीं। एक ही नाटक १८ वर्षों तक भी नहीं होता रह सकता। अतः अङ्क विभाजन से यह समय की विशालता थोड़े में करदी जाती है।

वैविध्य से ही एकता का महत्व है। एक रसता से जी ऊब जाता है। कोई व्यक्ति प्रतिदिन मिठाई ही मिठाई नहीं खा सकता। एक रसता वैसी ही है जैसे ब्रह्मा किसी रमणी को केवल अवन्धाकार में निर्मित कर दे और विभिनता ऐसी जैसी कि सर्वावयवशोभाढ्या रबासा। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उलूल फिजूल बाहरी घटनाओं से नाटक का गला ही रौंध दिया जाये। वह तो ऐसा होगा जैसा कि उक्त कामिनी के पूंछ और सींग लगा दिये जायें।

प्र०—आधुनिक नाटकों पर इब्सन का क्या प्रभाव पड़ा ?

उ०—नार्वे निवासी इब्सन ने नाटकीय आदर्शों में कई परिवर्तन किये हैं। उन में पांच बाते विशिष्ट हैं—

(१) नाटकों का विष ऐतिहासिक न रख कर वर्तमान समाज और उसकी समस्यायें बना दिया है। हमें अतीत की

अपेक्षा आसन्न का जीवन-प्रिय होता है। अन नवीन परिस्थितियों का नाटक में समावेश किया गया।

(२) नाटक की उच्च वंशजों की धरोहर नहीं रही। साधारण कोटि के लोगों को भी उसमें स्थान दिया गया॥ मानवीय जीवन की बहुत घटनायें साधारण-समुदाय में होती हैं। अतः ईसा जैसों को ही नायक मानना उचित नहीं।

(३) व्यक्तिगत द्वेष की अपेक्षा सामाजिक-विद्रोह को महत्व दिया गया। युवकों के हृदयों मे उठते हुए विद्रोह, सामाजिक बन्धन, मर्यादा आदि की ओर से उपेक्षा वृत्ति हो गई।

(४) वाह्य सघर्ष की अपेक्षा आन्तरिक संघर्ष को गौरव दिया गया।

(५) स्वगत, अर्ध स्वगत आदि कम हो गए जिस से नाट्य स्वाभाविकता की ओर बढ़ने लगा।

इससे रङ्गमञ्च भी वास्तविक स्थिति के अनुकूल हो गया और रङ्गमञ्च के सकेतों मे सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को भी संकेतित किया जाने लगा।

प्र०—आधुनिक नाटकीय प्रवृत्तियाँ क्या २ हैं?

उ०—यथार्थ वाद की प्रतिक्रिया चल रही है। क्षणिक समस्थानों को छोड़ा जा रहा है और मानव जाति की शाश्वत् और वास्तविक समस्याओं की ओर प्रवृत्ति हो रही है। प्राकृतिक घटनायें भी मानवी समस्याओं का प्रतीक बन रही हैं। नाटकों में गम्भीर आध्यात्मक विवेचना की जाने लगी है। कल्पना की उड़ान को प्राधान्य मिलने लगा। पन्त जी की 'ज्योत्सना' इसी प्रवृत्ति का फल है।

प्र०—एकाङ्की नाटक की उत्पति कैसे हुई? नाटक और एकाङ्की नाटक में क्या भेद है?

एकाङ्की नाटकों का उदय नाटकों के पश्चात् हुआ। नाटक देखने वाले कुछ लोग जब ठीक समय पर न पहुचते तो आए हुए लोगों को खाली न बैठा कर एकाङ्की नाटक दिखाया करते थे। इस पकार समय की पूर्ति के लिये ही पहले पहल इन नाटकों का अभिनय हुआ करता था। बाद मे जनता इन्हे अधिक पसन्द करने लगी और एकाङ्की नाटक पर्याप्त सख्या मे लिखे और खेले जाने लगे।

इन नाटकों का भी उदय भारत मे ही पहले हुआ है। जो लोग इनकी उत्पत्ति पश्चिमी वायु के झोंके से मानते हैं वे विदेशियों के पैर चाटने वाले है और "उदरनिमित्त बहुकृतवो:" पेट के लिये बहुत वेश बनाने वाले हैं। रूपक के दस भेदों में अङ्क एकाङ्की नाटक ही है।

भेद—एकाङ्की नाटक मे जीवन की किसी एक घटना का ही वर्णन होता है, नाटक मे साङ्गोपाङ्ग जीवन की व्याख्या होती है। एकाङ्की नाटक मे हम केवल सीता स्वयम्वर की प्रधान २ घटनायें पायेंगे और नाटक में राम की उत्पत्ति, उनके पिता, पितामह और प्रपितामह तथा पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र तक का निर्देश मिलेगा। वनगमन, रावण वध, अश्वमेध यज्ञ भी नाटक में मिलेंगे। उनके सम्बन्धी—सुग्रीव, जाम्बान्, हनुमान, बालि तक का वर्णन होगा।

नाटक एक हराभरा उद्यान है तो एकाङ्की नाटक एक पुष्पित और पल्लवि[illegible] गम[illegible]ा।

नाटक उस व्यक्ति के समान है जो चाँदनी चौक में से हर दुकान को देखना कुछ खरीदना सैर सपट्टा करना लालकिले के

पास जा निकला है। और एकाङ्की नाटक उसके समान जो फतहपुरी मस्जिद से दौड़ लगाता हुआ लालकिले पहुंचता है। सैर करने वाला पूछने पर बाजार की हर वस्तु और हर बात को बतला सकता है। घण्टाघर के पास कानपुरी चप्पलों का स्टोर और दहीवड़ों की दुकान उससे छुपी नहीं रहती। रीछ नचाने वाले ने रीछ को सुसराल कैसे भेजा था यह भी उसे अच्छी प्रकार मालूम है। मगर दौड़ कर निकने वाले व्यक्ति को रास्ते का कोई ज्ञान नहीं। उसकी दृष्टि लालकिले पर लगी हुई थी। हां अचानक भागते २ एक घण्टाघर की विशालता की ओर तो उसका ध्यन न गया था। उसी प्रकार एकाङ्की नाटक में लक्ष्य पर पहुँचना होता है। बाह्य घटनाओं की ओर उसमें ध्यान नहीं होता। नाटक में प्रासङ्गिक घटनायें छोड़ी नहीं जाती। एकाङ्की में छोड़ दी जाती हैं।

प्र०—उन्नीसवीं शताब्दी से पहले हिन्दी में नाटकों का अभाव क्यों था ? हरिश्चन्द्र से पूर्व के नाटकों का विवरण देकर उनकी विशेपताओं पर प्रकाश डालो।

उ०—यद्यपि रीतिकाल में अलङ्कार ग्रन्थों की काफी सामग्री संस्कृत से हिन्दी में अनूदित हुई तथापि नाट्य साहित्य से उदासीन ही रही, इसका कारण यह था कि खेल तमाशों के लिये जातीय उत्साह होना जरूरी है। मुसलमानों के आने से हिन्दुत्व का जोश शान्त हो ही चुका था। जिस जाति के पीतल ताम्बे के बर्तन भी विजेताओं को अखरने लगे हों, इसलाम धर्म की ओर अग्रसर होने वालों और शासक-पद-लेहकों की संख्या जहाँ प्रचुर हो वहां जातीय जोश कहाँ ? दूसरे बात यह है कि नाटक का उद्देश्य खेले जाने से ही पूरा होता है। दौड़-धूप और मारकाट के उस युगमें मन बहलावे की फुरसत कहां थीं ? फिर नाटक लेखकों

को रोजाना एक अशर्फी भी तो नही मिलती थी । मुसलमान नाटकों के कट्टर शत्रु हैं। उनके मत में वे निषिद्ध हैं। ऐसी दशा में न तो मुसलमानों ने उत्साह दिया और न हीं नाटक लिखे गए।

नाटक गद्य काव्य के अन्तर्गत है। उस समय तक गद्य की न तो प्रतिष्ठा थी और न कोई निश्चित रूप स्थिर था फिर कौन कवि ऐसी आफ़त को हाथ लगाता। इससे न स्वार्थ था न परार्थ। इन्ही हेतुओं से चौदहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी तक हिन्दी नाटकों का शृङ्खला विशृङ्खल रही।

कुछ नाटक इस युग मे लिखे तो गए थे पर वे नाटक कहवाने के अधिकारी नहीं हैं, यह तो केवल स्फुट उद्योग मात्र है।

आगरा के कवि श्री बनारसी दास ने सं० १६६३ में 'समयसार' नामक नाटक का अनुवाद किया। यह एक जैन कवि के प्राकृत से अनूदित है। इसमे नीति का विषय है।

प्राणचन्द का रामायण महानाटक दोहे चौपाइयों में कथोपकथन से निबन्धित है।

'देवमाया प्रपञ्च' देव कवि का लिखा हुआ है। १६८० सम्वत् में हृदयराम ने हनुमन्नाटक का अनुवाद किया। यह भी पद्य-मय है।

कृष्ण मिश्र के 'प्रबोध चन्द्रोदय' के अनेक अनुवाद हुए। जश्वन्तसिह और ब्रजवासीदास (१८१६ स०) मुख्य अनुवादक हैं।

नेवाज ने शकुन्तला का अनुवाद किया। यह भी पद्य-मय है। विश्वनाथसिंह ने आनन्द रघुनन्दन लिखा, जिसे काफी महत्व मिला।

मगर इन सब में हरिश्चन्द्र के पिता गिरधर दास का ही 'नहूप' नाटक नाटकीय शैली से स० १८९० में बना। इसके गद्य, पद्य दोनों व्रजभाषा में हैं।

अनूदित नाटकों में राजा लक्ष्मणसिंह (सन् १८५०-९६) का शकुन्तलानुवाद सब से उत्तम हुआ है। पद्य व्रजभाषा में और गद्य खड़ी बोली में है। गद्य सस्कृत मिश्रित है।

हरिश्चन्द्र से पूर्वकाल के नाटकों मे चार विशेतायें हैं—

(१) प्रायः अनूदित होते थे।

(२) धार्मिक और पौराणिक ही थे।

(३) सब व्रज भाषा में लिखे गये। अधिकांश का गद्य भी व्रजभाषा ही में था।

(४) सब में पद्य की प्रधानता थी, गद्य यदि था भी तो चतुर्थांश से भी कम था।

प्र०—भारतेन्दु की नाटक रचना के क्या उद्देश्य थे? उनके नाटकों पर विहङ्गम दृष्टि पात करो।

उ०—भारतेन्दु की नाटक रचना के मुख्य उद्देश्य निम्न थे—

(१) शृंगार (२) हास्य (३) कौतुक (४) समाज संस्कार (५) देशवत्सलता।

(१) विद्यासुन्दर—यह चौर कवि की 'चौर पंचाशिका' का छायानुवाद है। यह इन्होंने १८ वर्ष की उमर में ही बनाया था। इस में विद्या और सुन्दर की प्रेम कथा है।

(२) रत्नावली—यह अपूर्ण है। अनूदित है।

(३) पाखण्डविडम्बन—यह प्रबोध चन्द्रोदय के तीसरे अङ्क का अनुवाद है।

(४) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति—यह उच्च कोटिका प्रहसन है। जो इन्द्रियलोलुप मांसमद्यशास्त्र विहित मानते हैं उनका इसमे मजाक है।

(५) धनञ्जय विजय—वह कांचन कवि के व्यायोग का अनुवाद है। इसमें राजा विराट की कौरवों द्वारा चुराई गौओं के लिये अर्जुन के युद्ध का वर्णन है।

(६) प्रेम योगिनी—यह आत्म कथा के रूप मे है। इस में स्वयं भारतेन्दु राम वनकर तत्कालीन समाज का चित्र खींचते हैं।

(७) सत्य हरिश्चन्द्र—इनके मौलिक नाटकों में यहसब से ऊचा है। क्षेमेश्वर के चण्डकौशिक की इस में एक क्षीण सी छाया पड़ती है। इसमे करुण और वीर रसका अच्छा परिपाक हुआ है। यह १९३२ सं० मे लिखा गया था। (यह आज कल भूषण मे लगा है)।

(८) मुद्राराक्षस—यह विशाखादत्त के वनाये नाटक का अनुवाद है।

(९) कपूर मञ्जरी—इसका सट्टक प्राकृत से अनुवाद हुआ है। मूल-लेखक राजशेखर हैं। इसमें एक लम्पट राजा की प्रेम कथा है।

(१०) विषस्य विषमौषधम्—यह एक भाण है। इसमें महाराज मल्हार राव गायकवाड़ के अत्याचारों का आकाश भाषित से वर्णन किया है।

(११) चन्द्रावली—इसमें भारतेन्दु की अनन्य वैष्णवता और आदर्श प्रेम के दर्शन होते हैं।

(१२) भारत दुर्दशा—इसमें भारत की अवनति के कारणों को पात्र बना कर वर्णन किया है। (आजकल यह भूषण में लगा है।

(१३) भारत जननी—इसमें देश की दुर्दशा का निदर्शन है।

(१४) नीलदेवी—इसमें भारतीय स्त्रियों को अङ्गरेज़ स्त्रियों की तरह कार्य कुशल देखने की चाह है। नीलदेवी की वीरता पूर्ण कौशल और नवाबी दरबार का अच्छा चित्र खींचा है।

(१५) अन्धेर नगरी—यह प्रहसन है। इसमें भोजन भट्टों की जिह्वालोलुपता और अनाड़ी राजा के अन्याय का नमूना है। (आजकल यह भी भूषण में लगा है।)

(१६) सती प्रताप—इसमें सावित्री सत्यवान की कथा है। (यह भी भूषण में लगा है।)

भारतेन्दु ने सभी प्रकार के नाटक लिखे। इसमें सामाजिक दशा का चित्रण, हास्य की आदर्शमयी अभिव्यक्ति, देश प्रेम, देश सुधारक और आदर्श वादिता का पूरा ध्यान रखा है। व्यसनों के सम्बन्ध में अच्छे व्यंग्य झाड़े हैं।

प्र०—भारतेन्दु जी पर क्या २ आक्षेप किये जाते हैं? क्या वे संगत हैं? नहीं, तो उनका समाधान क्या है?

उ०—"भारतेन्दु देश भक्त थे, या अङ्गरेजी राज्य प्रशंसक? शायद वे देशभक्तिके नाते अङ्गरेजी राज्य की व्यवस्था के प्रशंसक

ही रहे हैं।" हरिश्चन्द्र पर यह पहला आक्षेप है। किन्तु यह मिथ्या है—सुनने वाले न सुने तो क्या किया जाये। वे तो पुकार २ कर कहते हैं "परधन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी"। जब किसी बात के बाद 'पर' लग जाता है तो पहली बात पर पानी फिर जाता है। अत. अङ्गरेजी राज्य की की हुई स्तुति व्यर्थ हुई।

भारतेन्दु की नाटकावली की प्रस्तावना में भी यह आपत्ति उठाई गई है कि एक देशी राज्य के पतन पर भारतेन्दु जी ने प्रसन्नता दिखाई है। यह देश प्रेम के विरुद्ध है। "विषस्य विषमौधम्" तो देशी राजाओं के अत्याचारों की औषध बतलाया ही है। इस का उत्तर यह है कि स्वदेशाभिमानी को अपनी कमजोरियाँ छुपा तो लेनी चाहिये किन्तु जब सीमा को ही अति क्रान्त कर जाये तो पोल खोल देने से ही कल्याण है।

'नील देवी नाटक मे एक आर्य ललना को मुसलमानी दर-बार मे भेजना भारतीय-मर्यादा के गले पर छुरी फेरना है' यहाँ भी तर्क वादी ने भूल की है। पद्मावती ने तो अलाउद्दीन से विवाह करने की स्वीकृति भी भेज दी थी। हम तो यह जानते हैं कि नाच कूद कर क्या और भी एक कदम आगे बढ़ कर भी अपनी लाज बचा रखने से कोई हर्ज नहीं।

'भारत दुर्दशा' मे आशा का सन्देश नहीं, उसे दुःखान्त ही बनाये रखा, बात तो ठीक सी है मगर करुणा का आधिक्य भी मनुष्य को उद्योगशील बना सकता है। अरे भाई! कवि का उद्देश्य देश मे जागृति पैदा करना है, वह आशा उत्साह से की जाये चाहे करुणा से बात एक ही है।

"हरिश्चन्द्र ने प्रकृति चित्रण न करते हुए शहर के दृश्य का वर्णन किया है, गगा वर्णन मे भी घाट का ही वर्णन है।" यह

भी कोई दोष है ? कवि जिस वस्तु से प्रभावित होता है उसी का तो वर्णन करेगा। अङ्गरेजी कवि भी तो नागरिक प्रवृत्ति का काफी वर्णन करते हैं ! उन्हें क्यों नहीं रोकते ?

"गङ्गा जी के वर्णन में काल दूषण है, क्योंकि हरिश्चन्द्र भगीरथ से पहले हुए थे और गङ्गा भगीरथ की लाई हुई है।" यह आपत्ति ठीक है।

"सत्य हरिश्चन्द्र का अन्तिम अङ्क बड़ा है, यह ठीक नहीं क्योंकि लोग देखते २ ऊब जाते हैं। अन्तिम अङ्क के बड़े होने से और भी ऊब जायेंगे" यह आक्षेप भी बहुत कुछ ठीक है।

संकलन रूप में उत्तर यह है कि उस प्रतीभाशाली भारत के इन्दु हरिश्चन्द्र पर दोषों का आरोप करना भोंदुओं का काम है, जिन्होंने हिन्दी में नाटकों को जन्म दिया। वस्तुतस्तु दोषग्राही दोषों की ओर ही लपका करते हैं, गुणों को छूना भी महापाप गिनते हैं। एक स्थान पर हलुवा, खीर, च्यवन प्राश, गुलकन्द और उसके साथ २ एक मलपरिपूर्ण घड़ा रख दिया जाये और बराह (सूअर) से कहा जाए— 'आइये भोजन पाइये' तो वह अच्छे पदार्थों की ओर न जाकर उस विष्ठे से भरे घट की ओर ही लपकेगा। यही दशा हम आक्षेपक महानुभावों की देखते हैं। भला यह आक्षेप करने की उनमें बुद्धि कहां से आई—भारतेन्दु के निर्दिष्ट-पथ पर चलते चलते न ? बस कृतघ्न ऐसे ही होते हैं। ३५ वर्ष की इस थोड़ी सी आयु में १७५ ग्रन्थों का निर्माण ! ये आक्षेपक कीट तो इतना ३५० वर्ष तक भी नहीं कर सकते। भौंकना आसान है, काटना कठिन। उनमें यदि एक आध दोष है भी तो—"एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः" एक दोष गुणसन्निपात में चांद में कलङ्क की भांति छुप जाता है। सर्वगुणसम्पन्न तो विष्णु भी नहीं, वे भी काले हैं।

प्र०—भारतेन्दु कालीन नाटककारों का परिचय देकर उनकी कृतियों का निर्देश करो और उनकी विशेषताओं पर संक्षिप्त नोट लिखो।

उ०—भारतेन्दु जी केवल स्वयं ही कलाकार न थे वरन उनके प्रभाव से और भी प्रभावित कलाकारों में गिने जाने लगे,—

श्री निवासदास—इनका जन्म १६०८ में हुआ था। 'परीक्षा-गुरु' इनका उपन्यास हिन्दी में अपना स्थान रखता है। सबसे पहले मौलिक उपन्यासकार यही थे। 'तपतोसवरण' इनका नाटक हिन्दी का चौथा नाटक है। प्रहलाद चरित, सयोगिता स्वयम्वर, रणधीर मोहिनी भी इन्हीं के लिखे हैं।

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन'—इनका 'भारत' और 'सौभाग्य' नाटक है। कला की दृष्टि से यह शिथिल है।

तोताराम—इनका जन्म १६०४ में हुआ। इनके केटो कृतान्त नाटक का हिन्दी में छठा स्थान है।

पं० गदाधर भट्ट—इनके पांच नाटक हैं। दो बङ्गला से अनूदित हैं। रेल का विकट खेल, बालविवाह, चन्द्रसेन—ये तीन मौलिक और सामाजिक हैं।

पं० प्रताप नारायण मिश्र—ये उन दिनों के एक देदीप्यमान नक्षत्र थे। कई प्रहसनों के सिवाय गोसङ्कट नाटक, कलि प्रभाव, जुआरी ख्वारी और हठी हमीर नाम के चार नाटकों की रचना की। ये वही हमीर थे जिनके विषय में 'तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी वार' प्रसिद्ध है।

श्री राधाकृष्ण दास—ये भारतेन्दु के फुफेरे भाई थे। दुखिनी

वाला, महारानी पद्मावती, महाराणा प्रताप, धर्मालाप नाम वा इनके चार नाटक हैं।

श्री केशवराम भट्ट—इन्होंने सज्जाद-सम्बुल और शम शा सौसन नामक दो नाटक लिखे हैं जिनके पात्र मुसलमान हैं औ उर्दू शब्दों का प्राचुर्य है।

इसी काल में 'मृच्छकटिक' संस्कृत नाटक का गदाधर भ द्वारा अनुवाद हुआ। रामकृष्ण ने 'कृष्णकुमारी' आदि बंगल नाटकों का अनुवाद किया।

उक्त नाटककारों ने प्रस्तावना आदि की उपेक्षा की है। समा की ओर अधिक झुकाव रहा है। गद्य में उर्दू का मिश्रण है हास्य और व्यग्य की मात्रा प्रचुरता से मिलती है।

प्र०—भारतेन्दु और नवीन युग के बीच की शृङ्खला पर एक नोट लिखो।

उ०—वर्तमान युग का उदय कहां से हुआ और भारतेन्दु युग कहां समाप्त हुआ इसका ठीक पता लगना कठिन है। राम-चन्द्र शुक्ल ने इन दोनों को मिलाने वाला एक मध्ययुग माना है जिसमें द्विजेन्द्रलाल और रवि बाबू के अनुवादों की प्रधानता रही। इन अनुवादों से गद्य के विकास को काफी सहयोग मिला। इस युग में कुछ मौलिक नाटक भी लिखे गये। उनमें से कुछ साहित्यिक थे और कुछ पारसी रङ्गमञ्च की नकल। मिश्र बन्धुओं का 'नेत्रोन्मीलन' बद्रीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' 'चन्द्रगुप्त' 'वेनचरित्र' 'चुङ्गी की उम्मीवारी' राय देवी प्रसाद का 'चन्द्रकलाभानु कुमार' मैथिली शरण का 'चन्द्रहास' प० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का 'मधुर मिलन' आदि। इस समय के मौलिक नाटक हैं। नारायण प्रसाद बेताब, प० राधेश्याम कथावाचक

पं० हरिकृष्ण जौहर और आग हश्र नाटक कम्पनियों के लिये लिखने वालों में मुख्य है। बेताब जी का "महाभारत" बहुत पसन्द किया जाता है। उर्दूपन होते हुए भी हिन्दी रङ्गमञ्च ने इसे स्थान दिया है। शुकल साहब का बुद्ध चरित भी अच्छा सिद्ध हुआ है। राधेश्यामें का 'वीर अभिमन्यु' लोक प्रिय हुआ। इनसे साहित्य की वृद्धि तो हुई नहीं, हां लोक रुचि मे काफी परिवर्द्धन हुआ। अवध वासी राय बहादुर लाला सीताराम ने संस्कृत के नाटकों का अनुवाद किया। श्री सत्यनारायण ने भव-भूति के मालतीमाधव और उत्तरराम चरित' का बडा सरस अनुवाद कर भवभूति की प्रतिमा का हिन्दी को परिचय करा दिया।

प्र०—हिन्दी नाट्य साहित्य का बाल्यकाल किन २ परिस्थितियों से होकर यौवनावस्था में पहुंचा है?

उ०—हिन्दी नाट्य साहित का बाल्यकाल हरिश्चन्द्र से आरम्भ होता है और यौवन जयशङ्कर प्रसाद से। बाल्य से यौवन तक पहुंचने मे उसे कई श्रेणियों को पार करना पड़ा है। पहले तो पद्य से गद्य की ओर प्रवृत्ति हुई। पद्य व्रजभाषा का और गद्य खड़ी बोली का हुआ। प्रस्तावना आदि का बहिष्कार होने लगा। धार्मिकता की जजीर से खुलकर ऐतिहासिक और सामाजिक नाटक लिखे जाने लगे। विषय में दैवी घटना को कम गौरव दिया जाने लगा। पहले के नाटकों के चरित्रों में आदर्श वादिता का प्रावल्य था अत: अन्तर्द्वन्द्व कम होते थे। कहीं आदर्श चरित्रों में महत्व कम न हो जाये, इसलिये भी सघर्ष को न अपनाया गया। अब भीतरी और बाहरी संघर्ष कोमहत्व दिया जाने लगा। पहले का सघर्ष हिन्दू-मुस्लिम बाह्य संघ र्षथा। धीरे २ आदर्श वादिता कम होने से चरित्रों में विकास होने लगा। पहले के चरित्र स्वयं विकसित होते थे उनका विकास कैसा? प्रसाद जी

के नाटक संघर्ष-मय बन गये। चन्द्रगुप्त नाटक में चन्द्रगु और सिकन्दर में चोट नहीं होती चाणक्य और अरस्तू की होत है अर्थात् यूनानी और भारतीय सभ्यता में सघर्ष दिखाया है।

प्र०—प्रसाद जी में नाट्य-साहित्य के प्राथमिक इत कलाकारों से क्या विशेषता है ?

पहले के नाटकों में हास्य व्यंग्य अधिक था। भाव प्रदर्श था तो मगर शब्दों की बोछाड़ों की भरमार थी। भावों व गम्भीरता न थी। प्रसाद जी के नाटकों में जो अन्तर्वेदना है व पहले के इतर नाटकों में नहीं। प्रसाद जी इतिहासवेत्ता, कवि और दार्शनिक थे इन तीनों गुणों का उनकी कृतियों पर छा पड़ी है। दार्शनिक समस्यायें बड़ी भावुकता से सुलझाई हैं। इन सारे गीत अन्तर्वेदना पूर्ण हैं। अतीत का बड़ा मनोरम औ स्वाभाविक ढङ्ग से चित्रण किया है। उनके नाटकों के पढ़ने तत्कालीन परिस्थिति का पूरा बोध हो जाता है। भारतीय सभ्यत के उद्‌घाटन का इनकी कृतियों में प्राधान्य है। स्त्रियों के मा की रक्षा की है। स्त्रियों में त्याग तपस्या और आत्मोत्सर्ग व प्रबलता का चित्र खींचा है देव सेना जैसी तपस्विनी पात्रिय रचना इन्हीं का काम था। कमला और रामा का चरित्र कित ऊंचे उठा दिया है। मगर अव्यवस्थित चित्ता वे फन्दे की रमणि की जो दशा होती है उसका नमूना दिखाने के लिये विजया जैस तरुणियों की कल्पना करने से भी प्रसाद जी नहीं चूकते हैं मगर इसमें भारतीय रङ्ग नहीं, यह पश्चिमी छटा है।

पतित और उन्नत सब प्रकार के पात्रों का चरित्र इन्हों ही खींचा है। भटा के जैसे विश्वास घातक, प्रपचबुद्धि जै नृशस-क्रूर पात्र भी कल्पित कर यथावत चित्रण करना इन्हीं व आता है। इनके नाटकों मे अहिंसा वादी होने के कारण करुण की छाप मिलती है।

महत्ता नहीं रही। हर बात पहले बुद्धि की तराज़ू पर तोली जाती है। यदि हलकी रहती है तो शिबि की भांति हृदयवाद को सीस काट कर भी चढ़ाना पड़ता है। जिस वस्तु का अधिक उपयोग होता है उसी को अधिक काम का माना जाता है। क्यों न हो— लोहा इस युग का सोना है! सामाजिक रूढ़ियां सन्त काल के कर्मकाण्ड की भांति हेय मानी जाने लगी। पाप और पुण्य की माप तोल भीं धर्म तुला से नही होती वह भी व्यक्ति के सुभीते पर निर्भर है। वर्तमान युग की उच्छृङ्खल स्वातन्त्र्य भावना की छाप हमारे हृदय पर पडने लगी। अभिजात वर्ग ही नाटकों का विषय न रह कर दलित वर्ग मे आ गया। नाटककार भी अछूतोद्धारक महात्मा गान्धी बन गए हैं। मानव समाज की आधुनिक कार्य व्यग्रता—दौड़ धूप का भी नाटकों पर प्रभाव पड़ रहा है। कार्तवीर्य की भुजाओं की तरह आज कल बहुत अङ्क नहीं होते और नहीं उनमें कृष्णा के चीरों की विशालता होती है। हर वस्तु शोर्ट में आकर महत्वविधायिनी बनतीं जा रही है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि प्राचीनता अब बिल्कुल छोड़ ही दी। मोटरों के साथ छकड़ा गाडी भी चलती है। माना कि छकड़ों में रबड़ के हवा भरे हालो वाले पहिए लग गए है मगर उसे बैल ही खींचते हैं। चाहे फैशन मे शुमार करती हुई ही पहने, मगर मोटी चूड़ियां अब जैन्टलमेन रमणियों के भी हाथो मे मिलेंगी। लहङ्गा बेशक उड़ गया मगर धोती की बनावट अभी लहंगे के बन्धुत्व को नही छोडती। तात्पर्य यह है कि आजकल के नाटककारों का रुख बिल्कुल पीछे की ओर न रह कर वर्तमान और भविष्य की ओर है।

प्र०—"एकाङ्की नाटकों में चरित्र चित्रण को विकास नहीं मिलता और न ही उस में कुछ मनोहारिता है" इस

उक्ति का विवेचन कर इस के सत्यासत्य पक्ष पर दृष्टि पात करो।

उ०—क्या उपवन के पौधे की तरह गमले के पौदे का विकास नहीं होता ? उसके पुष्प क्या रङ्ग परिवर्तन कर बैठते हैं ? उसके पत्ते क्या हरे भरे नहीं होते ? देखने मे उसकी मनोरमता क्या कम होती है ? नहीं ! उद्यान में रह कर उस एक पौधे का चाहे महत्व न बढे मगर घर के कक्ष में रखा हुआ वह खुदा के नूर से कम नही होता।

चान्दनी चौक से दौड़ कर निकलता हुआ व्यक्ति क्या चांदनी चौक के बारे में कुछ भी नहीं जानता ? क्या उस का चांदनी चौक बाजार का वर्णन मनोहारी न होगा ? होगा ? उसके एकही शब्द से हम सब कुछ भांप जाते है। उसकी एक २ बात नपी तुली होती है।

जब एकाङ्की नाटक मे जीवन की एक ही घटना पर चक्षु-क्षेप करना है तो क्या वह भी भली प्रकार न दीख पडेगी ? अन्धे भी सामने की वस्तु को टटोल कर पहचान लेते हैं।

एकाङ्की नाटक में एक ही घटना नाटकीय कौशल से कौतुहल सचय करती हुई चरम सीमा तक पहुंचती है। सारे अङ्ग प्रधान ही होते हैं। एक २ शब्द प्राण की भांति आवश्यक होता है। अनावश्यक पात्रों की भरमार से, कूडे किरकट से ही मनोरञ्जकता नहीं बढ़ती हर घटना कली की तरह खिल कर पुष्प रूप धारण कर लेती है, लता की भाति आस पास की जगह को कर घेर नही बैठती कथा वस्तु वर्णन प्रधान नहीं अभिनय प्रधान होती है। सत्य बात तो यह है कि एकाङ्की नाटक नाटक से दुष्कर है शायद इसलिए भी किसी ने ऐसा कह डाला है । मगर इस बात पर

विचार नहीं किया कि अच्छे खाते पीते घर की बालिका की तरह एकाङ्की नाटक का प्रारंभ, विकास और चरम सीमा (आनन्द की अन्तिम कोटि) बिना किसी ढील ढाल के शीघ्र ही हो जाते हैं।

प्र०—निम्नलिखितों पर संक्षिप्त नाटकीय नोट लिखो:—

पं० माखनलाल चतुर्वेदी, मिश्र बन्धु, पं० बद्रीनाथ भट्ट, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, पं० गोविन्द वल्लभ पन्त, बेचन शर्मा उग्र, मुंशी प्रेमचन्द, लक्ष्मीनारायण मिश्र।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी—आप एक प्रतिभा-सम्पन्न और साहित्यसेवी कवि हैं। आपने साहित्य के अन्यांगों के साथ नाटक अङ्ग की भी पूर्ति की है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक आप की अमर ख्याति है। नाटकीय विकास में भारतेन्दु और प्रसाद जी के बीच में आप शृङ्खला हैं।

मिश्रबन्धु—हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने में आप लोगों ने नेता का काम किया है। 'नेत्रोन्मीलन' नाटक में आपने अदालती कार्यवाही का अच्छा चित्र खींचा है। 'पूर्व भारत' और 'उत्तर-भारत' के द्वारा सारा महाभारत खोल कर रख दिया। आपका उद्देश्य कथा वस्तु की पूर्ति की ओर ही रहा।

पं० बद्रीनाथ भट्ट—आप हास्य विनोदी और प्रेमी स्वभाव के व्यक्ति थे। 'चुङ्गी की उम्मीद वारी' कुरुवन दहन, वेन चरित्र, तुलसीदास, चन्द्रगुप्त, दुर्गावती, मिस अमरीकन आदि नाटक आप की कृतियाँ हैं। आपके पहले नाटकों का कई जगह सफलता पूर्ण अभिनय भी हुआ है। मिस 'अमरीकन' एक प्रह-

सन है। इस में सेठ और अमीरों का मखौल उतारा है। कभी २ सीमा से वाहर भी कह डाला है। हास्य वलात्कार घुमाने का प्रयास करते हुए भी कहना पडेगा कि इन्होंने नाटक-साहित्य को पर्याप्त विकसित किया।

मैथिलीशरण गुप्त—कविता के क्षेत्र में [इन्हें] कौन नहीं जानता? आधुनिक युग के सूर्य है। नाटक क्षेत्र में चन्द्रहास नाटक लिख कर उसे भी अछूता न छोड़ा। मगर इसकी भी प्रकृति कविता और चमत्कार प्रदर्शन की ओर ही है। 'अनघ' गीत नाट्य है। यशोधरा में भी नाटकीय तत्व मिलते हैं।

रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम गीतों के संग्रह के साथ २ आपने जयन्त और चन्द्रलोक नाटक लिखे। इनमें कल्पना को पुट अधिक है। अब तक 'वफाती चाचा' नाटक और लिखा है जिस में हिन्दू मुस्लिम एकता की समस्या का विषय है।

गोविन्दवल्लभ पन्त—ये एक सफल नाटक कार हैं। वरमाला और राजमुकुट नाटकों से आपने अच्छी ख्याति पाई है। 'अंगूर की बेटी' में शराब की बुराइयाँ दिखलाई हैं। वरमाला के नायक नायिका एक दूसरे से उदास रहते हैं। बाद में जब परस्पर मुग्ध हो जाते हैं तो नायिका नायक को सूखी हुई वरमाला पहनाती है। राज मुकुट में पन्ना धाय की कहानी है।

बेचन शर्मा उग्र—महात्मा ईसा इनका प्रसिद्ध नाटक है। धार्मिकता के साथ इसमें दैवी घटनाओं का भी वर्णन है।

'चार बेचारे' एक प्रहसन भी लिखा है। जिसमें सम्पादक अध्यापक, सुधारक और प्रचारक का मजाक उड़ाया है।

मुंशी प्रेमचन्द—पृथ्वी के तख्ते पर ऐसा कोई ही व्यक्ति होगा जो इन्हें न जानता हो। ये उपन्यास लेखक शिरोमणि हैं। न्याय, हड़ताल, चांदी की डिबिया, जो जस्टिस, स्ट्राईक, सिलव-रबाक्स का अनुवाद लिखे हैं। कर्बला और सग्राम आप के मौलिक नाटक हैं। कर्बला हज़रत हुसैन की मौत से तालुक रखता है। मगर इनमें औपन्यासिक छाया आए बगैर न रही।

लक्ष्मीनारायण मिश्र—समस्यात्मक नाटकों में आह अग्रणी हैं। अशोक, सन्यासी, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, सिन्दूर की होली, राजयोग नाटक आप के नाम प्रशसक है।

सन्यासी में सहशिक्षा की बुराइयाँ दिखाई है। बुद्धिवाद का प्राधान्य है। प्रातः इन के नाटको मे प्रेम की ठोकर खाकर भस्म रमाने की प्रचुरता है। इनका मत है कि धूर्त लोग प्रेम मे सफल हुआ करते हैं। इनके प्रेम-वर्णन में वास्विकता तो है मगर ऊचा आदर्श नही। निराशा इनके नाटकों का मुख्य विपय है।

प्र०—सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदय-शंकर भट्ट, श्री सुदर्शन, चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, हरिकृष्ण प्रेमी, चतुरसेन शास्त्री, जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, सत्येन्द्र, जी० पी० श्रीवास्तव, डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप, डाक्टर मङ्गलदेव ने नाट्य साहित्य की क्या २ सेवाएँ की? इन का संक्षिप्त परिचय भी दो।

उ०—सेठ गोविन्ददास—राजनैतिक क्षेत्र से ही नहीं नाट्य क्षेत्र मे भी आपका प्रमुख स्थान है। कर्तव्य, हर्ष प्रकाश, स्पर्धा आपके हाल ही के नाटक है। कर्तव्य मे राम-कृष्ण की तुलना

की है। हर्ष में नायक को कर्तव्य परायण और नि स्वार्थ सेवक लिखा है। प्रकाश में सामाजिकता और ऐतिहासिकता का मिश्रण है। स्पर्धा मे स्त्री पुरुषों की स्पर्धा.का चित्रण है।

उपेन्द्रनाथ अश्क—जय पराजय और स्वर्ग की झलक आपके दो नाटक हिन्दी क्षेत्र में काफी मान पा चुके हैं। कई एकाङ्की नाटक भी लिखे है। जय पराजय मे वे जोड़विवाह का चित्र खींचा है। इस नाठक मे चण्ड की भौतिक पराजय और नैतिक जय का रूप दिखाया है। रणमल की नैतिक जय और पराजय के कथानक से लिपठा यह नाटक अच्छा मान्य हुआ है। स्वर्ग की झलक मे स्त्री शिक्षा का नमूना पेश किया है। ग्रेजुएठ स्त्री से सम्बन्ध होने से गार्हस्थ्य सुख लब्धि में क्षीणता आती है। वह गृहिणी नही तितली होती है।

उदयशङ्कर भट्ट—ये पजाब के प्रसिद्ध साहित्य सेवी है। ये प्राय. पौराणिक कथानक को अपनाते हैं। मगर बिजय, अन्वा, दाहर, मत्स्यगन्धा, विश्व मित्र वड़े सुन्दर नाटक आप की लेखनी से प्रसूत हुए है। कहीं हास्य की पुट आप वड़ी सुन्दर देते है। अम्बा का, मजाक उड़ाने में कमालकर दिया है। मगर इसे मर्यादा से वाहर कहना पड़ेगा।

श्री सुदर्शन—अञ्जना नाटक आप का विशेष प्रसिद्ध है। आनरेरी मैजिस्ट्रेट प्रहसन आपका वड़ा सुन्दर है। भाग्यचक्र आप का एक नया नाटक है जिस में वैराग्य और प्रेम का सघर्ष है।

चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार—आप के अशोक नाटक ने अच्छी प्रसिद्धि पाई है। चन्द्रगुप्त भी सुन्दर है इस मे मनोहर गीतों की छटा विशेष दीख पड़ती है। रेवा आप की आत्म गौरवाचिन्त कृति है।

हरिकृष्ण प्रेमी—शिव साधना और रक्षा बन्धन आपके दो ऐतिहासिक नाटक हैं। रक्षा बन्धन में राखी का महत्व दिखला कर मुसलमानों में भी उस का सत्कार वतलाया है। 'पाताल विजय' भी आप की अनूठी कृति है।

चतुरसेन शास्त्री—अमर राठौर, उत्सर्ग अजीतसिह नामक तीनों नाटक आपकी ऐतिहासिक कहानियों के आधार पर हैं। भाषा राजपूती ओज रखती है।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द—प्रताप प्रतिज्ञा नाटक आप का सर्वजन प्रिय हुआ है। इसमें स्वाभिमान और देश भक्ति की गहरी पुट है। इसमें भातृ प्रेम की स्वाभाविकता का निदर्शन अच्छा हुआ है।

सत्येन्द्रजी—मुक्ति यज्ञ इनकी सफल कृति है। छत्रसाल की वीरता का इस में अच्छा परिपाक हुआ है। मथुरा में इसका अभिनय भी हुआ था। इस में बुन्देलखण्ड की मुक्ति का वर्णन है।

श्री जी०पी० श्रीवास्तव—ने फ्रांसीसी नाटककार मोलिएर के नाटकों के अनुवादों को मौलिक रूप दिया है।

डाक्टर लक्ष्मण स्वरूप—ने 'बनिया चला नवाब की चाल' में मोलिएर का अनुवाद किया है। मङ्गलदेव ने 'मिना' जर्मन नाटक का अनुवाद किया है। ये बनारस यूनिवर्सिटी के रजिष्ट्रार हैं।

प्र०—बङ्गाली, मराठी और गुजराती नाट्यकला के विकास पर एक भावपूर्ण नोट लिखो।

उ०—प्रान्तीय भाषाओं में सब से पहले बङ्गाली में ही

हरिकृष्ण प्रेमी—शिव साधना और रक्षा वन्धन आपके दो ऐतिहासिक नाटक हैं। रक्षा वन्धन में राखी का महत्व दिखला कर मुसलमानों में भी उस का सस्कार वतलाया है। 'पाताल विजय' भी आप की अनूठी कृति है।

चतुरसेन शास्त्री—अमर राठौर, उत्सर्ग अजीतसिंह नामक तीनों नाटक आपकी ऐतिहासिक कहानियों के आधार पर हैं। भाषा राजपूती ओज रखती है।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द—प्रताप प्रतिज्ञा नाटक आप का सर्वजन प्रिय हुआ है। इसमें स्वाभिमान और देश भक्ति की गहरी पुट है। इसमें भातृ प्रेम की स्वाभाविकता का निदर्शन अच्छा हुआ है।

सत्येन्द्रजी—मुक्ति यज्ञ इनकी सफल कृति है। छत्रसाल की वीरता का इस में अच्छा परिपाक हुआ है। मथुरा में इसका अभिनय भी हुआ था। इस में वुन्देलखण्ड की मुक्ति का वर्णन है।

श्री जी०पी० श्रीवास्तव—ने फ्रांसीसी नाटककार मोलिएर के नाटकों के अनुवादों को मौलिक रूप दिया है।

डाक्टर लक्ष्मण स्वरूप—ने 'वनिया चला नवाव की चाल, में मोलिएर का अनुवाद किया है। मङ्गलदेव ने 'मिना' जर्मन नाटक का अनुवाद किया है। ये वनारस यूनिवर्सिटी के रजिष्ट्रार हैं।

प्र०—वङ्गाली, मराठी और गुजराती नाट्यकला के विकास पर एक भावपूर्ण नोट लिखो।

उ०—प्रान्तीय भाषाओं में सब से पहले वङ्गाली में ही

नाट्यकला का विकास हुआ। वहाँ की नाट्यकला का सम्बन्ध यात्राओं से था। प्रायः गीत-गोविन्द की लीलाओं का ही उन में अभिनय होता था। उ के बाद विद्या सुन्दर की लोकरंजिका कथाओं का अभिनय होने लगा। उन्नीसवी सदी से पहले की नाटकीय रचनाएं धार्मिक और पद्यमय थीं। भगवान कृष्ण और चैतन्य महाप्रभु के चरित्रों की उनमें प्रधानता थी। उत्सवों पर उनका गान होता था। १७५७ ई० में सब से पहले कलकत्ता थिएटर की कलकत्ते में स्थापना हुई। १७६५ ई० में एक देशी ढङ्ग का रङ्गमञ्च बना जिस में दो अनुवादित नाटक खेले गए। अङ्गरेज़ी नाटक गृहों को देख कर वहाँ के जमीदारों का ध्यान इधर गया और चन्दा इकट्ठा कर दो लाख रुपये लगा कर पहले पहल विद्या सुन्दर का नवीनचन्द्रवसु के घर पर अभिनय हुआ। १८५७ ई० में रामनारायण तर्क रत्न के कुलीन कुल सर्भस्व का बाबू जयराम बसाक के घर खेल किया गया। इस तरह कई निजी मण्डलियां स्थापित हो गईं जिन से बङ्गाली नाट्यकला को काफी प्रोत्साहन मिला। दूसरा नाटक रत्नावली का बंगाली अनुवाद था। माइकेल मधुसूदन का ध्यान जब इधर गया तो अच्छे २ नाटकों की रचना होने लगी। "एकेकी वाले सभ्यता" शर्मिष्ठा, पद्मावती, कृष्णकुमारी आदि अच्छे २ नाटक निकले। गिरीशचन्द्र घोष अब सार्वजनिक नाट्य गृह बनाने के उद्योग में लग गए। क्योंकि अब तक धनिक लोग ही मनोरञ्जन कर पाते थे। घोष ने हरिश्चन्द्र, बलिदान, बिल्वमङ्गल, पाण्डव गौरव, छत्रपति शिवा जी आदि बहुत से नाटक लिख २ कर सर्व जनता के सन्मुख अभिनीत करवाए। सामाजिक नाटकों में दहेज प्रथा की करुणता अङ्गरेज़ी पढ़े बाबुओं का मज़ाक उड़ाया जाने लगा।

द्विजेन्द्रलाल राय ने बङ्गाली नाटकों में दूसरा ही युग परिवर्तन कर दिया। उन्होंने सभी तरह के नाटक लिखे किन्तु ऐति-

हरिकृष्ण प्रेमी—शिव साधना और रक्षा बन्धन आपके दो ऐतिहासिक नाटक हैं। रक्षा बन्धन में राखी का महत्व दिखला कर मुसलमानों में भी उस का संस्कार बतलाया है। 'पाताल विजय' भी आप की अनूठी कृति है।

चतुरसेन शास्त्री—अमर राठौर, उत्सर्ग अजीतसिंह नामक तीनों नाटक आपकी ऐतिहासिक कहानियों के आधार पर हैं। भाषा राजपूती ओज रखती है।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द—प्रताप प्रतिज्ञा नाटक आप का सर्वजन प्रिय हुआ है। इसमें स्वाभिमान और देश भक्ति की गहरी पुट है। इसमें भातृ प्रेम को स्वाभाविकता का निदर्शन अच्छा हुआ है।

सत्येन्द्रजी—मुक्ति यज्ञ इनकी सफल कृति है। छत्रसाल की वीरता का इस में अच्छा परिपाक हुआ है। मथुरा में इसका अभिनय भी हुआ था। इस में बुन्देलखण्ड की मुक्ति का वर्णन है।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव—ने फ्रांसीसी नाटककार मोलिएर के नाटकों के अनुवादों को मौलिक रूप दिया है।

डाक्टर लक्ष्मण स्वरूप—ने 'बनिया चला नवाब की चाल' में मोलिएर का अनुवाद किया है। मङ्गलदेव ने 'मिना' जर्मन नाटक का अनुवाद किया है। ये बनारस यूनिवर्सिटी के रजिष्ट्रार हैं।

प्र०—बङ्गाली, मराठी और गुजराती नाट्यकला के विकास पर एक भावपूर्ण नोट लिखो।

उ०—प्रान्तीय भाषाओं में सब से पहले बङ्गाली में ही

नाट्यकला का विकास हुआ। वहाँ की नाट्यकला का सम्बन्ध यात्राओं से था। प्राय गीत-गोविन्द की लीलाओं का ही उन मे अभिनय होता था। उ । के बाद विद्या सुन्दर की लोकरञ्जिका कथाओं का अभिनय होने लगा। उन्नीसवी सदी से पहले की नाटकीय रचनाएं धार्मिक और पद्यमय थीं। भगवान कृष्ण और चैतन्य महाप्रभु के चरित्रों की उनमें प्रधानता थी। उत्सवों पर उनका गान होता था। १७५७ ई० मे सब मे पहले कलकत्ता थिएटर की कलकत्ते में स्थापना हुई। १७९५ ई० मे एक देशी ढङ्ग का रङ्गमञ्च बना जिस मे दो अनुवादित नाटक खेले गए। अङ्गरेज़ी नाटक गृहों को देख कर वहाँ के जमीदारों का ध्यान इधर गया और चन्दा इकट्ठा कर दो लाख रुपये लगा कर पहले पहल विद्या सुन्दर का नवीनचन्द्रवसु के घर पर अभिनय हुआ। १८५७ ई० में रामनारायण तर्करत्न के कुलीन कुल सर्भस्व का बाबू जयराम बसाक के घर खेला किया गया। इस तरह कई निजी मण्डलियां स्थापि । हो गई जि । से बङ्गाली नाट्यकला को काफी प्रोत्साहन मिला। दूसरा नाटक रत्नावली का बंगाली अनुवाद था। माइकेल मधुसूदन का ध्यान जब इधर गया तो अच्छे २ नाटकों की रचना होने लगी। "एकेकी वाले सभ्यता" शर्मिष्ठा, पद्मावती, कृष्णकुमारी आदि अच्छे २ नाटक निकले। गिरीशचन्द्र घोष अब सार्वजनिक नाट्य गृह बनाने के उद्योग मे लग गए। क्योंकि अब तक धनिक लोग ही मनोरञ्जन कर पाते थे। घोष ने हरिश्चन्द्र, बलिदान, बिल्वमङ्गल, पाण्डव गौरव, छत्रपति शिवा जी आदि बहुत से नाटक लिख २ कर सर्व जनता के सन्मुख अभिनीत करवाए। सामाजिक नाटकों में दहेज प्रथा की करुणता अङ्गरेज़ी पढ़े बाबुओं का मज़ाक उड़ाया जाने लगा।

द्विजेन्द्रलाल राय ने बङ्गाली नाटकों मे दूसरा ही युग परिवर्तन कर दिया। उन्होंने सभी तरह के नाटक लिखे किन्तु ऐति-

हासिक नाटकों से उनकी कीर्ति अमर हो गई। नाटकों में संगीत का बड़ा मनोरम समावेश किया है। प० रूपनारायण पाण्डेय ने उनका हिन्दी में भी अनुवाद किया है। उनके नाटकों मे स्वदेश प्रेम और वाह्याम्बर के विरोध की छाप यत्रतत्र मिलती है। (१) मेवाड़ पतन (२) दुर्गादास (३) राणा प्रतापसिंह (४) चन्द्रगुप्त (५) सिंहलविजय (६) परपारे (७) ताराबाई (८) शाह जहाँ (६) नूरजहाँ (१०) बंगनारी (११) पापाणी (१२) सीता (१३) सोहराब रुस्तम (१४) विरह उनके मुख्य २ नाटक हैं। (१) पुनर्जन्म (२) कल्कि अवतार (३) त्र्यहस्पर्श (४) एक छेर (५) बहुत अच्छा (६) आनन्दविदाय इनके प्रहसन हैं।

कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर की सर्वतोमुखी प्रतिभा से बगाली नाट्य साहित्य खूब विकसित और फलित हुआ। रवि बाबू कवि थे, अतः भाव प्रधान नाटकों की प्रधानता रही। सगीत पर्याप्त मात्रा में है। (१) वाल्मीकि प्रतिभा, (२) कालमृगया, (३) माया का खेल, (४) प्रकृति प्रतिशोधा, (५) राजा रानी (६ विसर्जन (७] मालिनी (८) विदाय [अभिशाप (६) चित्राङ्गदा (१०) लक्ष्मी परीक्षा आदि अनेक पुस्तकें प्रस्तुत की हैं। मगर ये साधारण रङ्गमञ्च की वस्तुए नहीं हैं।

इसी प्रकार और भी बहुत से लेखक हुए और बगाली नाट्य साहित्य को शिखर पर चढ़ा दिया जिससे हिन्दी को काफी प्रगति मिली।

मराठी के नाटक भी रङ्गमञ्च के योग्य हैं। सब प्रथम कर्नाटकी मण्डली से प्रभावित होकर सांगली के राजा ने विष्णुपन्त भवे को नाटकों का आयोजन करने के लिये प्रेरित किया। भवे ने कई नाटक लिखे और मण्डली भी तैयार की। यह मण्डली व्यवसायिक रीति से चलने लगी। देखा देखी और भी मण्डलियाँ उठी। पहले अनूदित फिर ऐतिहासिक नाटक तैयार होने

लगे। यहाँ भी सामाजिक नाटक खेले जाने लगे और कुरीतियों का उद्घाटन होने लगा। शारदा नाटक सब से पहला नाटक था जो प्रतिद्वन्द्वता के लिये लिखा गया। इन नाटकों से संगीत देशी था।

गुजरात में पारसीक कम्पनियाँ नाटक खेला करती उन की रोक थाम के लिये रण छोड़ भाई उदयराम नेता बन खड़े हुए। संस्कृत से गुजराती में अनुवाद हुए। 'ललिता दुख सुदर्शन' गुजराती का पहला दुःखान्त नाटक था। आजकल के० एम० मुंशी ने कई अच्छे नाटक लिखे हैं। इन्हें रङ्गमञ्च का अच्छा ज्ञान है। इनकी धर्मपत्नी लीलावती ने कई अच्छे २ एकाङ्की नाटक लिखे हैं।

आर० वी० देसाई ने 'शङ्कित हृदय' नाटक लिखा जो बड़ा सफल हुआ।

प्र०—'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्रापि च शकुन्तला' समीक्षा की सत्यता पर एक भावपूर्ण लेख लिखो। "तत्रापि चतुर्थोऽङ्कः" की विशिष्टता पर भी प्रकाश डालो?

उ०—'काव्यों में नाटक रम्य है और नाटकों में शकुन्तला' यह प्राचीन भारत की समीक्षा है। हमने शकुन्तला को सब से बढा चढा कर बतला कर अपना महत्व स्वयं ही नहीं बढाया है बल्कि जर्मनी के महाकवि गेटे ने भी इसकी पुष्टि की है। वे कहते हैं—यदि कोई वसन्त के फूलों और फलों को एक स्थान पर देखना चाहे, यदि आत्मा को मुग्ध करने वाले सुधा को देखना चाहे यदि स्वर्ग और मर्त्य को मिला हुआ देखा चाहे तो शकुन्तला नाटक पढ़े।

शकुन्तला सर्व प्रधान क्यों है? इसमें भारत के चक्रवर्ती भरत की पुण्य कथा है श्रृङ्गार में अलौकिक मर्यादा और सात्विकता है। इस की रति में विश्वमैत्री निन्हूत है। दुष्यन्त की घातक वृत्तियाँ तपोवन में आकर शान्त हो जाती हैं। तपोवन के अलौकिक सौन्दर्य के दर्शन से राजा की मनोवृत्तियाँ कोमल हो जाती हैं अहंभावना भाग जाती है। मृग वध से निवृत होने वाले राजा को पुत्र प्राप्त का वर मिलता है जिस नाटक में पशुओं ने भी अपनी पशुता को त्याग दिया वह क्यों न सर्व शिरमणि हो। इस नाटक का राजा सच्चे अर्थों में राजा है। तपोवन की शांति को भङ्ग नहीं होने देना चाहता। सब फौज फड़र वापिस भेज देता है। दुष्यन्त शकुन्तला पर पतगे की भांति दीपक पर नहीं टूट पड़ना, उसकी जाति पाँति पूछ कर लोक मर्यादा का पालन करता है, अपने शुद्ध अन्त करण की प्रवृत्ति की ओर ध्यान देता है। जब उसका शुद्ध मन उधर झुक गया तो जरूर वह बाला उसके व्याहने के योग्य है। शकुन्तला नाटक का दुष्यन्त यहाँ तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम से कम नहीं "मन कुपन्थपग धरइ न काऊ"। दोनों ओर से मन बन्ध जाते हैं। पारस्परिक समझौते से निपट कर कण्व की राय के लिए वे उसे साथ नहीं ले जाते। बल्कि माता पिता की आज्ञा को आवश्यक समझा।

जब दुष्यन्त का कोई आदमी अन्त:पुर से शकुन्तला को लेने न गया तो दो शिष्यों को साथ कर कण्व पुत्री को पति के पास भेजते हैं। दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त अपने किए कृत्य को भूल गये थे। भला फिर वे परनारी को किस तरह छूते। त्यागना आवश्यक था। 'तेरे ही बस मो हियो और काहू बस ना' अब उन्हें याद नहीं था। नदी के प्रवाह की भांति अपने को गन्दा करने वाली और तटवर्ती वृत्त को गिराने वाली शकुन्तला का खब तिरस्कार हुआ, मगर अगूठी मिलते ही दुष्यन्त को वे बातें खटकने लगीं! फिर तो वे सच्चे पतीव्रत की भान्ति चित्र बना र

कर तपस्या करने लगे। यहां तक कि उनका मुंह भी पीला पड़ गया। राजा की आज्ञा का पशु पक्षी वृक्षों तक ने भी पालन किया। राम की भांति दारा-त्याग की कसक हृदय को चूसती जा रही थी। शकुन्तला पिता के पास नहीं गई, माता के दरवाजे पर पहुँचती है। हर समय माता का द्वार पुत्री के लिए खुला रहता है। स्वय विपत्ति मे होकर भी शकुन्तला नाटक का राजा दूसरों की सहायता करने जाता है। वापिस लौटते समय सर्वदमन दर्शन से जैसी वात्सल्य भावना यहाँ दुष्यन्त के हृदय में जागृत होती है वैसी अन्यत्र नही मिल सकती।

इस नाटक में पति पत्नी को पृथक करके मिलाया है। दुःखानुभव करके ही सुख में आनन्द आता है।

नाटक में फूल और फल इकट्ठे ही नहीं वरन् फल पहले लगे फूल वाद में आए।

रस, अलङ्कार, सन्धि और अवस्थाओं की दृष्टि से यह नाटक पूर्ण है। भारतवर्ष की सात्विक संस्कृति का इस मे स्वाभाविक चित्र है। अतः सब नाटकों में श्रेष्ट माना है।

चौथे अङ्कमें तो स्वाभाविकता और मर्मस्पर्शिता की पराकाष्ठा है। भारतीय दुहिताओं की विदा प्राचीन होती हुई भी नूतन है। इस अङ्क मे कालिदास ने मानव प्रकृति का हृदय ग्राही परिचय दिया है। कण्व के आश्रम के तरु वेलें पशु पक्षी तक अपना व्यक्तित्व रखते हैं। मूक होते हुए भी मानुष मानस के साथ प्रतिस्पन्दित हो पड़ते ह। शकुन्तला की विदाई के खेद से मृग मुख मे घास नहीं लेते, मोरों ने नृत्त छोड दिया, पीरे २ पत्तों के बहाने लताएं आंसू डालने लगी। मृग-शावक 'जाहि पूत लौं लाड लडावत ही' शकुन्तला के पैरों से चिमट जाता है। गाभिन हरिनी के सकुशल व्याने की सूचना पहुचाने तक का निर्देश है।

शकुन्तला सर्व प्रधान क्यों है? इसमें भारत के चक्रवर्ती भरत की पुण्य कथा है शृङ्गार में अलौकिक मर्यादा और सात्विकता है। इस की रति में विश्वमैत्री निन्हूत है। दुष्यन्त की घातक वृत्तियाँ तपोवन में आकर शान्त हो जाती हैं। तपोवन के अलौकिक सौन्दर्य के दर्शन से राजा की मनोवृत्तियाँ कोमल हो जाती हैं अहभावना भाग जाती है। मृग वध से निवृत होने वाले राजा को पुत्र प्राप्त का वर मिलता है जिस नाटक में पशुओं ने भी अपनी पशुता को त्याग दिया वह क्यों न सर्व शिर मणि हो। इस नाटक का राजा सच्चे अर्थों में राजा है। तपोवन की शांति को भङ्ग नहीं होने देना चाहता। सब फौज फड़र वापिस भेज देता है। दुष्यन्त शकुन्तला पर पतगे की भांति दीपक पर नहीं टूट पड़ता, उसकी जाति पांति पूछ कर लोक मर्यादा का पालन करता है, अपने शुद्ध अन्त करण की प्रवृत्ति की ओर ध्यान देता है। जब उसका शुद्ध मन उधर झुक गया तो जरूर वह बाल उसके व्याहने के योग्य है। शकुन्तला नाटक का दुष्यन्त यह तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम से कम नहीं "मन कुपन्थपग धरइ न काऊ"। दोनों ओर से मन बन्ध जाते हैं। पारस्परिक समझौते से निपट कर कण्व की राय के लिए वे उसे साथ नहीं ले जाते। बल्कि माता पिता की आज्ञा को आवश्यक समझा।

जब दुष्यन्त का कोई आदमी अन्त:पुर से शकुन्तला को लेने न गया तो दो शिष्यों को साथ कर कण्व पुत्री को पति के पास भेजते हैं। दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त अपने किए कृत्य को भूल गये थे। भला फिर वे पर-नारी को किस तरह छूते। त्यागना आवश्यक था। 'तेरे ही बस मो हियो और काहू बस ना' अब उन्हें याद नहीं था। नदी के प्रवाह की भांति अपने को गन्दा करने वाली और तटवर्ती वृक्ष को गिराने वाली शकुन्तला का खब तिरस्कार हुआ, मगर अगूठी मिलते ही दुष्यन्त को वे बातें खटकने लगीं! फिर तो वे सच्चे पतीव्रत की भान्ति चित्र बना २

कर तपस्या करने लगे। यहां तक कि उनका मुंह भी पीला पड़ गया। राजा की आज्ञा का पशु पत्ती वृत्तों तक ने भी पालन किया। राम की भांति दारा-त्याग की कसक हृदय को चूसती जा रही थी। शकुन्तला पिता के पास नहीं गई, माता के दरवाजे पर पहुँचती है। हर समय माता का द्वार पुत्री के लिए खुला रहता है। स्वय विपत्ति मे होकर भी शकुन्तला नाटक का राजा दूसरों की सहायता करने जाता है। वापिस लौटते समय सर्वदमन दर्शन से जैसी वात्सल्य भावना यहाँ दुष्यन्त के हृदय में जागृत होती है वैसी अन्यत्र नहीं मिल सकती।

इस नाटक में पति पत्नी को पृथक करके मिलाया है। दुःखानुभव करके ही सुख में आनन्द आता है।

नाटक में फूल और फल इकट्ठे ही नहीं वरन् फल पहले लगे फूल बाद में आए।

रस, अलङ्कार, सन्धि और अवस्थाओं की दृष्टि से यह नाटक पूर्ण है। भारतवर्ष की सात्विक संस्कृति का इस मे स्वाभाविक चित्र है। अतः सब नाटकों में श्रेष्ठ माना है।

चौथे अङ्कमें तो स्वाभाविकता और मर्मस्पर्शिता की पराकाष्ठा है। भारतीय दुहिताओं की विदा प्राचीन होती हुई भी नूतन है। इस अङ्क मे कालिदास ने मानव प्रकृति का हृदय ग्राही परिचय दिया है। कण्व के आश्रम के तरु बेलें पशु पत्ती तक अपना व्यक्तित्व रखते हैं। मूक होते हुए भी मानुष मानस के साथ प्रतिस्पन्दित हो पड़ते है। शकुन्तला की विदाई के खेद से मृग मुख मे घास नहीं लेते, मोरों ने नृत्त छोड दिया, पीरे २ पत्तों के बहाने लताएं आँसू डालने लगी। मृग-शावक 'जाहि पूत लौं लाड लडावत ही' शकुन्तला के पैरों से चिमट जाता है। गाभिन हरिनी के सकुशल व्याने की सूचना पहुंचाने तक का निर्देश है।

कहाँ तक कहें आश्रमके पारिवारिक जीवन का अनूठा चित्र पढ़ ... नेत्रों के सामने नाचने लगता है।

शकुन्तला हरलता से विशेष कर नवमल्लिका गले ल कर अपनी सखियों को सौंप कर पति गृह की ओर कदम बढ़ाt है। सखियाँ भी तो दुखी हैं। वे कहती है—हमें किस के हा सौंपती हो। कण्व वृक्षों से—

सो यह जात शकुन्तला आज पिया के गेह।
आज्ञा देहु पयान की तुम सब सहिय सनेह॥

विदाई मांगते हैं। 'शुश्रूषा गुरुजन की कीजो', अन्तिम उप देश और आशीर्वाद कितना धार्मिक है।

मो से बन वासीन जो इतो सतावत मोह।
तो गेही कैसे सहें दुहिता प्रथम बिछोह॥

कण्व की यह उक्ति तो पाठक को रुला देती है। शकुन्तल के यह कहने पर कि 'मेरे लिये बहुत शोक मत करना' कण्व कहते हैं—

तें आगे बोए सुता पूजा हित नीवार।
सो उपजे हैं आए के परन कुटी के द्वार॥
इन्हें लखत कैसे सकूं अपनी व्यथा मिटाय।
तो बिछुरन ते जो भई मेरे हिये में आय।

ठीक है सम्बन्धी-वस्तु को देख कर याद अधिक सताया ह करती है। शकुन्तला को ज्यों त्यों बिदा करके कण्व वापस लौटते हैं और कहते हैं—

घर घर को धन धीय पठै ताहि घर पीय के।
आज विकल मम हीय फेरि धरोहर जनु दई॥

वास्तव में ही पुत्री के विदा करने से एक बोझ सा उतर जाता है। सरलता सरसता और स्वभाविकता का यह अनूठा चित्रण ही चतुर्थ अङ्क को शिरोमणि बनाए हैं।

प्र०—'उत्तर राम चरित में भवभूति बाजी ले गया है' यह उक्ति कहाँ तक संगत है, उद्धारणों से साहित्यक समीक्षा करो।

उ०—वैसे तो भारत के नाट्य साहित्य के अनेक उज्वल रत्न हैं परन्तु भयभूति और कालिदास तो उसके चन्द्र और सूर्य हैं। इन में सूर तुलसी की भांति कौन सूर्य है यह कहना जरा कठिन सा है पर हाँ लोग यह कहते हैं कि 'उतरे राम चरिते भवभूति र्विशिष्यते' उत्तर राम चरित में भवभूति औरों से बढ़ गए हैं। तथ्य भी है क्योंकि शकुन्तला से उत्तर राम चरित में करुणा की मात्रा अधिक है। शकुन्तला भी निर्वासित रही और सीता भी किन्तु दोनों में कुछ अन्तर हैं। दुष्यन्त ने तो दुर्वासा के शाप से शकुन्तला को भुला दिया इस से उन का उत्तरदायित्व नहीं रहा। मगर राम ने पति धर्म का प्रजा के लिये बलिदान किया। शकुन्तला में पुरोहित ने मानवता का पक्ष लिया। राम को रोकने वाला कोई न था। सब आज्ञा की मर्यादा में बन्धे पड़े थे। गुरुजनों में से कोई न था। उत्तर राम चरित में संघर्ष भी विशेष है—

पति का और राजा का, कुल की ख्याति और सीता के प्रति न्याय का, व्यक्ति और कुल का, लोक पक्ष और आत्म पक्ष का। इस संघर्ष से कर्त्तव्य में बाधः नहीं पहुंची है। राम ने प्रजारञ्जन को बलि वेदी पर सीता को चढ़ा दिया किन्तु अपने आंसुओं से पतिधर्म में लगे कलङ्क को अन्त तक धोते रहे। यहाँ सीता की महत्ता राम से बढ़ चली है। इसे उत्तर राम चरित कहा जाता

है पर सीता की चरम सीमा को पहुँची हुई सहनशीलता का प्रकाशन है। सूत्रधार ने आरम्भ से ही इस पर मत प्रकट किया है—

सती सियहु को दोस दे, जन सब करत अनीति।
अपर तियन की जगत में को करि है परतीत॥

राम गुरु का सन्देशा आने पर सीता के सामने ही कह देते हैं—

मोह, दया, सुख, सम्पदा, जनकसुता वरु होय।
प्रजा हेतु तिनहु तजत, विथा न व्यापहि मोय॥

इससे सीता के बन चलते समय राम को सफाई देने की जरूरत न पडी यह कवि की कुशलता है।

स्वयं राम के सीता के प्रति विचार कैसे हैं—

अति पुनीत सिया निज जन्म सों
तिहि भला पुनि पावन को करे।
लहि सके कहूँ अन्य पदार्थ सों
अनल तीरथ तोय विशुद्धता॥

भवभूति ने सीता का वियोग अचानक नहीं बुलाया वह ठीक समय पर आवाहन करने पर आता है। राम की भुजा का तकिया लगाये सीता सोती है। राम सीता के विषय में कहते हैं—

कछु न जाको लगत अस, जाको सुख सन्योग।
किन्तु दुसह दुख को भरयो, केवल जासु वियोग॥

प्रतिहारी—उपस्थित है महाराज।

यहाँ दुर्मुख की उपस्थित से वियोग की उपस्थिति की सूचना दी है।

सीता के प्रेम में सराबोर राम तुरन्त सीता निर्वासन की आज्ञा देते हैं। सीता सो गई थी। उन्हें कुछ पता नहीं। वन दिखाने के बहाने उसे घर से निकाल दिया। इस से बढ कर विश्वास घात क्या हो सकता है। राम ने इसे स्वयं भी स्वीकार किया है—

'जमराज के आनन देन चह्यौं जनु मैना कसाई को सौंप दई'

राम केवल कर्तव्य पालन की डींग नहीं मारते। वे असह्य वेदना से कराहते हैं—

जगत में नित भोगन को व्यथा,
वस मिल्यो यह जीवन राम को।
मरम भेदक प्राननु सौं जड़यो,
सकत ना कढि वेयस चेतना॥

राम राजकाज वश राज भवन से बाहर चले गये हैं। पीछे से सीता वन चलने के लिये तैयार होती है और कहती हैं—

"अच्छा देखा जाएगा। फिर मिलने पर जो मैं अपने वश रही तो उन पर बिना कोप किये न रहूँगी" यह भारतीय सह धर्मणी का नमूना है! निरपराधिनी सीता को पति ने त्याग दिया मगर उसके मुंह से आह तक न निकली। किसी दूसरे से भी पति की निन्दा नहीं सुन सकी। उसे अपने पुत्रों का फिकर है। कहीं उन्हें भी राम न अपनाएं।

शम्बूक को राम मारने के लिये प्रस्तुत होते हैं? वहाँ भी सीता स्मृति:—

है पर सीता की चरम सीमा को पहुँची हुई सहनशीलता का प्रकाशन है। सूत्रधार ने आरम्भ से ही इस पर मत प्रकट किया है—

सतीं सियहु को दोस दे, जन सब करत अनीति।
अपर तियन की जगत में को करि है परतीत॥

राम गुरु का सन्देशा आने पर सीता के सामने ही कह देते हैं—

मोह, दया, सुख, सम्पदा, जनकसुता वरु होय।
प्रजा हेतु तिनहु तजत, विथा न व्यापहि मोय॥

इससे सीता के वन चलते समय राम को सफाई देने की जरूरत न पडी यह कवि की कुशलता है।

स्वयं राम के सीता के प्रति विचार कैसे हैं—

अति पुनीत सिया निज जन्म सों
तिहि भला पुनि पावन को करे।
लहि सके कहूँ अन्य पदार्थ सों
अनल तीरथ तोय विशुद्धता॥

भवभूति ने सीता का वियोग अचानक नहीं बुलाया वह ठीक समय पर आवाहन करने पर आता है। राम की भुजा का तकिया लगाये सीता सोती है। राम सीता के विषय में कहते हैं-

कछु न जाको लगत अस, जाको सुख सन्योग।
किन्तु दुसह दुख को भरयो, केवल जासु वियोग॥

प्रतिहारी—उपस्थित है महाराज।

यहाँ दुर्मुख की उपस्थित से वियोग की उपस्थिति की सूचना दी है।

सीता के प्रेम में सराबोर राम तुरन्त सीता निर्वासन की आज्ञा देते हैं। सीता सो गई थी। उन्हें कुछ पता नहीं। वन दिखाने के बहाने उसे घर से निकाल दिया। इस से बढ कर विश्वास घात क्या हो सकता है। राम ने इसे स्वयं भी स्वीकार किया है—

'जमराज के आनन देन चहौं जनु मैना कसाई को सौंप दई'

राम केवल कर्तव्य पालन की डींग नहीं मारते। वे असह्य वेदना से कराहते हैं—

जगत में नित भोगन को व्यथा,
वस मिल्यो यह जीवन राम को।
मरम भेदक प्राननु सों जड़्यो,
सकत ना कढि वेयस चेतना॥

राम राजकाज वश राज भवन से बाहर चले गये हैं। पीछे से सीता वन चलने के लिये तैयार होती है और कहती हैं—

"अच्छा देखा जाएगा। फिर मिलने पर जो मैं अपने वश रही तो उन पर बिना कोप किये न रहूँगी" यह भारतीय सह धर्मणी का नमूना है! निरपराधिनी सीता को पति ने त्याग दिया मगर उसके मुंह से आह तक न निकली। किसी दूसरे से भी पति की निन्दा नहीं सुन सकी। उसे अपने पुत्रों का फिकर है। कहीं उन्हें भी राम न अपनाएं।

शम्बूक को राम मारने के लिये प्रस्तुत होते हैं। वहाँ भी सीता स्मृति:—

रे हस्त दक्षिण ! मृतस्य शिशो र्द्विजस्य ।
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम् ॥
रामस्य बाहुरसि निर्भर गर्भ खिन्न—
सीता विवासनपटो ! करुणा कुतस्ते ॥

वे अपने को निष्करुण मानते हैं । जब गर्भभारालसा अपनी प्रतिमा सीता तक को धक्के दे कर निकाल दिया तो शम्बूक के मारने में क्या दया आएगी ।

प्रिय से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं स्थानों को देखने से विरही को जो घोर दुःख हुआ करता है उसका भवभूति ने वन पर्वत दर्शन प्रकरण में खूब उद्घाटन किया है । ज्यों ज्यों राम वन पर्वतों के देखते हुए आगे बढ़ते हैं उसके दुःख के समुद्र में ज्वार भाटा आता जाता है ।

भवभूति ने छन्द और भाषा की अनुकूलता का विशेष ध्यान रखा है । माधुर्य और ओज कूट २ कर भरे हैं ।

भवभूति ने सीता को अदृश्य दिखला कर राम को सीता निर्वासन अपराध से मुक्त कर दिया है । जब तीव्र वेदना से राम चिल्ला उठते हैं—

हा ! हा !! प्यारी फटत हृदय यह जगत शून्य दरसावै ।
तन बन्धन सब भए सिथिल से अन्तर ज्वाला जरावै ॥
तो बिन जनु डूबत जिय तम में छन छन धीरज छीजै ।
मोहावृत सब ओर राम यह मन्द भाग्य का कीजै ॥

तो सीता को राम की निरपराधता का पूरा पता लग जाता है ।

पिता जनक पुत्री सीता की बचपन की सुधी कर करके रोते हैं। यह स्थल भी बड़ा रमणीय हैं। लव की वीरता और चन्द्रकेतु लव के सौहर्द का अनूठा चित्र खिचा है। युद्ध का रमणीय दृश्य बड़ा पराक्रम मय है। राम को लव कुश के देखने पर जो वात्सल्य उमड़ता है वह शकुन्तला से भी बढा चढा है।

भवभूति का रस सचार प्रसिद्ध है। उसकी करुणा पत्थर को भी रुला देती है इसी लिये उत्तर राम चरित में भवभूति बाजी ले गये हैं।

नोट—चित्राङ्गदा की कथा प्रथम सोपान में दे दी गई है। इस के अतिरिक्त मूल पुस्तक में और कोई विशिष्ट बात नहीं जिस का कोई प्रश्न बना कर उत्तर लिखा जाए।

प्र०—द्विजेन्द्रलाल राय और प्रसाद जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटकों की तुलनात्मक आलोचना करो।

उ०—चन्द्रगुप्त नाटक लिख कर उक्त दोनों कवियों ने अपनी २ प्रतिमा का परिचय दिया है। दोनों नाटकों में ही चन्द्रगुप्त अपना अलग अस्तित्व रखता है और अपने पौरुष के साथ अपने साम्राज्य की स्थापना करता है। दोनों ही नाटकों में यूनानी सेनापति सेल्यूकस की पुत्री से चन्द्रगुप्त का विवाह हुआ है। राम जी ने उस का नाम हेलेन रखा है प्रसाद जी ने कार्नीलिया। इन नाटकों में मन्त्रियों की चोटें नहीं बल्कि चाणक्य और अरस्तु की अर्थात् भारत और यूनान की सभ्यता की चोटें हैं। दोनों में ही विवाह से यूनान और भारत में सन्धि स्थापित की है।

इन समताओं के साथ २ बहुत सी बातों में भेद भी है—

राय महोदय ने मुगल कालीन भारत का चित्र खींचा है प्रसाद जी मध्यकालीन भारत के चित्र में विशिष्ट रहे हैं।

राय महोदय की पुस्तक पहले की है मगर प्रसाद जी ने उस की नकल नहीं की। राय महोदय ने चन्द्रगुप्त को मुरा दासी का पुत्र माना है प्रसाद जी ने मौर्य क्षत्रिय सेना-नायक का पुत्र। बौद्ध इतिहासकारों का भी यही मत है। प्रसाद जी ने अपने नायक को कुलीन रखा है। दोनों नाटकों में नन्द का वध शकटार के हाथ से हुआ। उसकी हत्या में चन्द्रगुप्त को निर्दोष रखा है। राय महोदय चाणक्य और मुरा दोनों को ही कात्यायन के साथ नन्द की हत्या में साथ लपेटते हैं। मुरा को यहाँ रमणी के उच्च भावों से गिरा दिया है। चन्द्रगुप्त मना करने पर मुरा बीच में आकर खड़ी हो जाती है और कहती है कि नहीं! मारो। बाद में उसका रोना धोना विडम्बनामात्र है। राय जी ने उस राज्य विद्रव को गृह युद्ध का रूप दिया है। नन्द को वन्दी करा कर उसका वध कराया है। प्रसाद जी ने तुरन्त मरवा डाला है।

प्रसाद जी ने नन्द पुत्री कल्याणी की सृष्टि की है जिसने पिता के शासन का विरोध करते रहने पर चन्द्रगुप्त से प्रेम रखते हुए भी पिता की हत्या से आत्म हत्या कर ली है।

प्रसाद जी ने राक्षस और कात्यायन दोनों ही मन्त्री माने हैं राय जी ने केवल कात्यायन को मन्त्री माना है। राय ने कात्यायन को चाणक्य से मिला दिया है।

राय महोदय ने चाणक्य को नन्द के यहाँ पुरोहित कर्म के लिये आमन्त्रित करा कर नन्द के साले वाचाल द्वारा उसका अपमान पहले वैर का उद्दीपक हुआ।

राय महोदय चन्द्रगुप्त को भेदिया बना कर सिकन्दर और सेल्यूकस के साथ स्टेज पर लाते हैं। वह अपनी वाग्विदग्धता

और सिकन्दर की उदारता से कैदी होने से बच जाता है। प्रसाद जी पूर्व कथा में रुचि नहीं रखते। चन्द्रगुप्त सिकन्दर के देखते २ अपने वाहुवल से मुक्त हो भाग जाता है। यह कुछ अस्वाभाविक सा है। राय महोदय का चन्द्रगुप्त कुछ डरा हुआ है प्रसाद जी का सिंह की भांति निर्भीक है। सिकन्दर को लुटेरा कहने में भी नहीं चूकता। प्रसाद जी ने सिकन्दर को जख्मी दिखलाया है, राय जी ने भारत की महत्ता की ओर ध्यान नहीं दिया।

प्रसाद जी का चन्द्रगुप्त अविचलित है राय का चाणक्य के चले जाने पर हताश सा हो जाता है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य का वैमनस्य दोनों ही नाटकों में है। विशाखादत्त के मुद्राराक्षस का ही वर्णन है इन नाटकों में कौमुदी महोत्सव की जगह विजयोत्सव मनाया जाता है। चन्द्रगुप्त को चाणक्य का नियन्त्रण दोनों ही नाटकों में अखरता है। राय जी चन्द्रगुप्त तो चाणक्य के कैद करने तक का आर्डर दे देता है मगर हिम्मत किसी की नहीं पडती। इस में चन्द्रगुप्त की अशिष्टता प्रती होती है। गुरु का राजमद से इतना अभिमान ठीक नहीं।

राय का सेल्युकस पुत्री के विवाह के लिए राजदरवार में नहीं जाता, प्रसाद जी का दरवार में जाता है।

दोनों नाटकों में अर्थ शास्त्र के अकाण्ड पण्डित क्रूर चाणक्य में कुछ कोमलता के भाव दिखलाए हैं। राय ने चाणक्य में अपनी खोई हुई लड़की के प्रति वात्सल्य के भाव वड़े अच्छे ढङ्ग से दिखाए हैं। प्रसाद जी ने सुवासिनी के प्रति कोमलता दिखलाई है मगर वह अपने पथ से च्युत नहीं होता, राक्षस के साथ उसके विवाह में सहायक होता है। प्रसाद जी का राक्षस अच्छे चरित्र का व्यक्ति नहीं। वह विलासी है उसकी मुद्रा से इन्होंने भी काम लिया है। राय जी ने उसका कोई उल्लेख नहीं किया।

राय के नाटक में विश्वप्रेम है। प्रसाद जी के नाटक में देश सङ्गठन और राष्ट्रीयता के भावों की प्रधानता है। ये दोनों ही आवश्यक होने के कारण दोनों नाटक ग्राह्य और मनोरञ्जक हैं। किसी को अच्छा बुरा या छोटा बड़ा नहीं कहा जा सकता।

नोट—इससे आगे परिशिष्ट भाग में—प्रबोध चन्द्रोदय, भारत दुर्दशा, शाह जहाँ, ध्रुवस्वामिनी, बुद्धदेव, ज्योत्स्ना, भोर का तारा नाटकों के कुछ उद्धारण दिये हैं। जिन्हें प्रश्नोत्तर शृङ्खला में बांधना अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया है। विद्यार्थी इन्हें दो तीन बार ध्यान से पढ़ लें।

तृतीय सोपान

१—(लांगूल)

आजकल की शैली के अनुसार परीक्षा में गद्यांशों की व्याख्या बहुत आया करती है उसके नमूने "कवि मानव जाति का वकील है, कैसे ?" से दिये हैं। ऐसे प्रश्नों की सीमा नही हो सकती। एक २ वाक्य को पकड़ कर ऐसे प्रश्न बनाए जा सकते हैं—'नाटक सिनेमे की अपेक्षा वास्तविकता के अधिक निकट होता है' 'नाटक जीवन की सांकेतिक अनुकृतिक नहीं है वरन् सजीव प्रतिलिपि है' आदि भावगर्भी शतशः वाक्य पुस्तक में मिलेंगे, जिनको रख कर "कैसे ?" जोड़ा जा सकता। एक तो ऐसे प्रश्नों के बनाने में परीक्षक को बुद्धि से द्वन्दयुद्ध नहीं करना पड़ता, दूसरी बात यह है कि परीक्षक की विनोद-शालिनी मति विद्यार्थियों के ऐसे प्रश्नों के उत्तरों से अपनी कुतुहल-वृत्ति की शान्ति कर पाती है। विद्याथियों के बुद्धि विकास का भी इससे पूरा पता चल जाता है। हमारी पुस्तक के दूसरे सोपान का समवेत प्रश्न-भार छात्रों को इस योग्य बनाने में समर्थ है कि वे

ऐसे प्रश्नों का उत्तर अपने अविकल ज्ञान से चुटकियों में दे सकते हैं। अब छात्र छात्राओं का कर्तव्य केवल इतना शेष रह जाता है कि वे पुस्तक में दिये हुए प्रश्नों में से एक को भी न छोड़ें। सुगमता के लिए दो चार बार गद्यांशों की व्याख्या कर के भी देख लेनी चाहिए—करत २ अभ्यास सों जड़मति होत सुजान।

२—(लेखक का परिचय)

'हिन्दी नाट्यविमर्श' के लेखक हैं श्री गुलाबराय जी एम० ए०। आप १६४४ विक्रमी सम्वत् में इस दुनिया में पधारे हैं। आजकल सेन्टजॉन कालेज आगरा में आप हिन्दी के प्रोफेसर हैं। 'साहित्य सन्देश' का सम्पादन आप ही के हाथों द्वारा हो रहा है। अब से पहले छतरपुर रियासत के कई ऊचे पदों को अलकृत कर चुके हैं। आरम्भ से आप दर्शनों का अध्ययन करते रहे हैं। कर्तव्य शास्त्र, तर्क शास्त्र (भाग १—३) ग्रन्थ भी आपने लिखे हैं। तर्क शास्त्र, के पहले दो भागों में पश्चिमी तर्क शास्त्र की विवेचना की है। तीसरे भाग में भारतीय तर्क शास्त्र का वर्णन है। 'विज्ञान वार्ता' भी आपकी एक अच्छी पुस्तक है।

निबन्ध लेखकों में आपका अच्छा मान है। विचरात्मक और साहित्यिक दोनों प्रकार के लेख आप के अच्छे होते हैं। 'प्रबन्ध-प्रभाकर' नामक निबन्ध सग्रह अच्छा सिद्ध हुआ है।

आप भारतीय नहीं हैं, शायद इसी लिए भारती होने का आपको गर्व भी नहीं है। आप की आत्मा सम्भवतः एम०ए० होने के कारण योरुपियन है और 'क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोक विशन्ति' पुण्य क्षीण हो जाने पर भारत में पधारे हैं। इतना होने पर भी आप के स्थविर कलेवर की लज्जा सब करते हैं।

३—(मूलपुस्तकान्तर्गतपद्यार्थ)

पृ० ६०—बहुत दिनों के बाद विपरीत चिन्हों के देखने से यह कोई भिन्न (दण्डकातिरिक्त) ही वन मालूम पड़ता है किन्तु पर्वतों को जहाँ के तहाँ देख कर यह वही पञ्चवटी है' यह विश्वास दृढ़ होता है।

पृ० १०१—सज्जन भगवान के चरणों में लगे रहें और दुष्टों से तङ्ग न किए जाएं। पुरातन वैदिक धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म छूट जाएं। भारत अपने पन को ग्रहण करे, अपने हक प्राप्त करता रहे। टैक्सों के सब दुःख वह जाएं। पंडित लोग पारस्परिक द्वेष छोड़ दें। स्त्रियाँ पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करें। सारा जगत सुख पावे। ग्रामी कविताओं को छोड़ कर अच्छे कवियों की अमृत जैसी वाणी का सब आदर करें।

पृ० ११८—हम जाग चुके हैं और संसार के जगाने में लग पड़े हैं। लोक में फिर प्रकाश फैलने लगा।

पृ० ११६—रोहित को जो ये वलि देते हैं तो वह नहीं लेता बल्कि मना करता है क्योंकि यह अधम राक्षसी क्रिया है, यह सन्मार्ग नहीं है बल्कि महा अपराध है जिस से कभी पार होने की सभावना नहीं। देव प्रकाशमय होता हुआ किसी को दुःख नहीं देता।

पृ० १५०—मृग के इस कोमल शरीर में यह वाण लगने के योग्य नहीं है जैसे कि फूलों के ढेर में आग रखना अच्छा नहीं।

भैसों को कुण्डों में सींग परवार २ रंगरेली (विहार) करने दो। हरिणों का लहण्डा वृक्षों के नीचे आ आकर बैठ जुगाली कर सुख पावें सूअरों का झुण्ड खादर में जाकर वे खटके मोथों

की जड़ खोद २ खए। यह ढीली ढाली डोरी वाला हमारा धनुष आज आराम कर अपनी थकान दूर करे।

पृ० १५२—जब मेरा शुद्ध मन इस ी अभिलाष करने लगा है तो यह अवश्य क्षत्रिय के व्याहने के योग्य है इस में शक नहीं जब सज्जन के हृदय में शक होता है तो उसके अन्तःकरण की प्रवृत्ति ही निर्णय कर देती है।

इस (सीता) की अलौकिक शोभा को देख कर मेरा पवित्र मन क्षुब्ध क्यों हुआ इसका कारण तो विधाता ही जानता है। हे भाई लक्ष्मण मेरे शुभ अङ्ग फड़कते है। स्वाभाविक नियम है कि रघुवंशियों का मन कुपन्थ में कभी पैर नहीं रखता। मुझे अपने मन पर पूरा विश्वास है। इस में स्वप्न में भी पर स्त्री के दर्शन नहीं किए हैं।

पृ० १५४—मृग मुख में घास नहीं लेते। मोरों ने नाचना छोड़ दिया। लताए पीले २ पत्तों के बहाने आंसू ढलका रही हैं।

हे पुत्री! जब कभी तू कुशाओं से इसका मुंह छिदा देखती थी तो अपने हाथ से तेल हिंगोट लगाया करती। और जिसका पालन पोषण करने के लिये मूठों २ धान और सामक खि ाया करतो। वह मृग शिशु जिस का पुत्र की तरह लाड लड़ाया करती, अब तेरे पैर क्यों छोड़ने लगा?

पृ० १५५—तुम्हे पहले पानी पिला कर जो स्वय पीछे पीया करती। गहनों का चाव होते हुए भी तुम्हारे फूल पत्ते नहीं तोड़ा करती। जब तुम्हारे फूलने के दिन आते तो फूली अङ्गों में नहीं समाया करती और बड़ी उत्सव मनाया करती, वही यह शकुन्तला तुम्हारी सहवासिनी आज पति के घर जाती है। तुम सब प्रेम के साथ उसे प्रस्थान की आज्ञा दो।

हे पुत्री ! पूजा के लिए जो नीवार तूने पर्णकुटी के द्वार पर बोए थे वे अब उत्पन्न हो गए हैं। उन्हें देखते हुए तेरे वियोग से अपने हृदय की व्यथा को कैसे मिटा सकूंगा ?

पृ० १५६—मुझ जैसे वनवासी को जब इतना मोह सताता है तो गृहस्थी पुत्री के वियोग को कैसे सहन करते होंगे।

पृ० १५७—हे पुत्री शकुन्तला तेरी सुध भुला दुष्यन्त निष्ठुर हो गया था। वास्तव में शाप के वस हो कर तू त्यागी थी। अब भ्रम मिट जाने से स्वय तुझे सब प्रभुता दे दी।

पृ० १५६—ईंधन डाले बिना अग्नि की ज्वालाएं नहीं बढ़ती। जो छेड़ा न जाए तो नाग भी फण नहीं उठाता। क्षोभ पाए बिना मनुष्य के मन में अभिमान नहीं आता। उक्त तीनों के स्वभाव ही ऐसा है।

खिलोना मांग लेने के सिए जब हाथ फैलाया तो सब अंगुलियाँ जाल से गुन्थी हुई सी एक साथ ऐसे दीख पड़ी मानों प्रातःकालीन अरूण ने वह कमल खिलाया हो जिसकी पंखड़ियों में जरा भी अन्तर नहीं दीख पड़ता।

पृ० १६०—(इस पद्य में प्रथम पदांश भूल से छप गया है।)

बिना कारण की हसी से बतीसी (बत्तीस दांत की पक्ति) कुछ २ ऐसे दीख पड़ती है मानों छोटी २ कलियों की पक्ति नजर आ रही हो। बोलना चाहता है तो टूटी फूटी बातें निकल जाती हैं। इसकी तोतली बोली बड़ी मीठी लगती हैं। गोद से बढ़ कर और कोई स्थान इसे प्यारा नहीं लगता। आँगन की भूमि को छोड़ दौड़ २ कर गोदी चढ़ना चाहता है। ऐसे पुत्रों की धूलि को गोदी में लगा कर जो अपने शरीर को मैला करते हैं वे नर जगत में धन्य हैं।

पृ० १६१—प्रजा के लिये राजा हमेशा अपने सत्कार्तव्यों पर तैयार रहें। वेदाध्यायी पडित प्रेम से सरस्वती का पूजन करते रहें। उमापति, कल्याणकारी, जगत के पति, भगवान शिव जी मुझे आवागमन की विपत्ति से छुड़ावें।

पृ० १६४—जो सच्ची स्त्रियों में और सत्कविताओं में दोष देखते रहते हैं ऐसे कुटिल मनुष्यों से भला कौन वे खटके रह सकता है।

जब सती सीता जैसी को दोष देकर। लोग अनीति कर रहे हैं तो और स्त्रियों का ससार में कौन विश्वास करेगा।

पृ० १६५—गफलत छोड़ कर नित्य प्रजा को प्रसन्न रखना ही तेरा कर्तव्य है। प्रजानुरंजन से उत्पन्न हुए यश रूपी धन से ही रघुवंश की अधिक प्रभुता है।

प्रजा के लिये मोह, दया, सुख, सम्पत्ति चाहे जनकसुता सीता भी क्यों न हो, छोड़ने में मुझे पीड़ा नहीं पहुँचेगी।

पृ० १ ६—सीता अपने जन्म से ही अति पवित्र है, भला उसे पवित्र कौन करेगा। अग्नि और तीर्थ-जल क्या किसी अन्य पदार्थ से शुद्धि प्राप्त करेगा?

जो राजा कुल, कीर्ति, रूप और धन चाहते हैं वे प्रजा का मन चाहा करें। इसी कारण से जो अयोग्य वचन निकले वे हे सीता तेरे योग्य नहीं हैं—वे अब तक मुझे सता रहे हैं।

पृ० १६७—तेरे नेत्रों से टपकती हुई टपाटप आसुओं की झड़ी लगी है और यह पृथ्वी पर इस प्रकार बिखर गई है मानों मोतियों की लड़ी टूट पड़ी हो। यद्यपि विरह की वेदना को रोकते हो तथापि हृदय भर आता है। जब ह ठ और नासापुट कांपते हैं तो अनुमा न से जान लिया जाता है।

पृ० १६८—सीता की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिस से सुख न मिलता हो मगर इसका केवल वियोग ही दु:सह दु:ख से भरा है।

पृ० १६९—सुख दु:ख में जो एक रस रहता है और हृदय का प्यारा विश्राम-स्थल है। हर भांति से अनुकूल, स्वच्छ और अटल लक्षण वाला है। वृद्धावस्था जिस की सरसता को हरण नहीं कर सकती, ज्यों ज्यों बढ़ता है गहरा और सुन्दर सुखदायक होता जाता है। जो अवसर पर सङ्कोच तज कर दृढ़ और सच्चे अनुराग में परिणत हो जाता है, ऐसा सज्जन का प्रेम संसार में दुर्लभ है, कोई बड़ भागी ही प्राप्त कर पाता है।

संसार में सूर्यवशी राजा उत्तम और हर प्रकार से परम पवित्र हैं। उनका उज्वल और साधु चरित्र सब के लिये अनुकरणीय हैं। उनका वह कुल मेरे जन्म से अत्यन्त मलीन हो गया है। जिसकी ससार में ऐसी निन्दा होती है उस मुझ अधम को धिक्कार है।

पृ० १७१—संसार में नित्य वेदाना मांगने के लिये ही बस राम को जीवन मिला है। मर्मभेदक प्राणों से जड़ी हुई यह चेतना लाचार होकर निकल नहीं सकती।

पृ० १७२—जिनका हृदय बज्र से बढ़ कर कठोर और फूल से भी कोमल है। संसार में जो ऐसे अलौकिक जन हैं भला उनकी थाह कौन पा सकता है।

पृ० १७३—रे! मेरे दायें हाथ! ब्राह्मण कुमार को जिलाने के लिये अब इस तलवार को सभाल और शूद्र मुनि पर प्रहार कर! तू उस निर्दयी राम का हाथ है जिसने दु:सह गर्भ के भार से खिन्न जनक दुलारी सती सीता को विजन वन में धक्का दे कर निकाल दिया था। रे कठोर! नृशंस!! तुझ में दया का अंश कहां?

ये वे ही पर्वत हैं जहां मदमस्त मोरों की मीठी ध्वनि छाई रहती थी। जिस वन में सुन्दर मृगों की क्रीड़ायें मन को भाया करती थीं। वृक्षों की छाया की नीली सुषमा को धारण करके नदी का किनारा अत्यन्त शोभित हुआ करता ।। जहाँ सुन्दर वञ्जुलता की चुभीली छवि हरी-भरी रहा करती था।

जहाँ बांसों की कुञ्जों की कुटीरों में उल्लुओं की भीड़ 'घू घू' करके घोरा करती थी और जिनकी ध्वनि की प्रति ध्वनि को सुन कर अभिमान छोड़, बहुत पुराने चन्दन विटप के कोटरों में साँप सिकुड़ कर कुडली मार बैठ जाते थे।

पृ० १७५—हा प्यारी हृदय फटता है। यह ससार शून्य दीख पड़ता है। शरीर के वन्धन सब ढीले हो गये हैं, चिन्ता जला रही है। तुझ विन जीव अन्धकार में डूब रहा है, क्षण २ में धैर्य क्षीण होता जा रहा है चारों ओर से मोह में घिरा हुआ यह अभागा राम अब क्या करे ?

पृ० १७६—कोमल कुन्द कली के समान सुन्दर अपने दांतों की पंक्ति को जो क्षणिक रोकर और क्षण में विना कारण के हँस कर चमकाती थी। जो तुतला कर कुछ की कुछ मीठी वातें कहा करती थी। हे सीते पुत्रि। वचपन के तेरे कमल जैसे मुख की अब भी मुझे याद बनी है।

पृ० १७७—यद्यपि कुश और लव की नम्र वचनावलि का वर्णन नहीं किया जा सकता, इनका उठना, बैठना, चलना, बोलना सुख दायी है तथापि इन में विलक्षण उदारभाव चक्रवर्ती राजाओं के शुभ लक्षण जितलाता है।

पृ० १७८—हे रघुकुलमौर राम! धर्मानुसार यह सीता तुम्हारी प्रिया सहधर्मिणी है। परमप्रेम से इसे स्वीकार कीजिए।

तुम्हारे पास जो सोने की मूर्ति है उसकी जगह इस पुण्य प्रकृति सीता को दो।

पृ० १७६—मैं मणिपुर की राजकन्या चित्राङ्गदा हूं। मेरे पितृवश में कभी राजकन्या न जन्मेगी। तपस्या से प्रसन्न हो कर शिव ने ऐसा वर दिया था। उसी वरदान को मैंने निष्फल किया है निष्फल न जाने वाला शिव वाक्य भी मुझे महान शैव तेज से मातृगर्भ में घुस कर पुरुप न वना सका। मैं वही क्रूर स्त्री हूँ।

पृ० १८०—पुरुप समाज की तरह सज, युवराजों की भांति राजकाज करती हूँ और इच्छानुसार घूमती हूँ। लज्जा भय और अन्त·पुर निवास को जानती तक नहीं।

पृ० १८१—मैं वाल्यकाल से ही दुराशा से सोचा करती थी कि "मैं अपने अपूर्व बाहुवल से अर्जुन की वीर कर्ति को प्रभा हीन करूंगी। उस पर अचूक लक्ष्य मारूंगी। पुरुष वेष में मिल कर उस वीर से युद्ध याचना करूंगी, और वीरता का परिचय दूंगी। हायरी मुग्धे! तेरी यह स्पर्धा आज कहां चली गई।

पुरुष वेश उतार कर फेंक दिया, तागड़ी (मेखला) कंकणों के साथ अच्छी रङ्ग की साड़ी पहन ली।

पृ० १८२—अर्जुन! तुझे धिक्कार है! वता मैं कौन हूँ? और मेरे पास क्या है? देख, तूने क्या लिया है? तुम मुझे क्या समझते हो? तुम किस के लिए अपने को भूलते हो। हाय! क्षण भर में अपने सत्य को भङ्ग कर अपने अस्तित्व को खो बैठे! किस के लिए? क्या मेरे लिए नहीं?

हाय पार्थ: (अर्जुन!) यह मैं नहीं हूं यह किसी देव की माया है! जाओ तुम लौट जाओ! वीर तुम सत्य की उपासना मत करो।

पृ० १८३—एक वर्ष भर के सुन्दर स्वरूप की कथा माया की महिमा से वीरवर का हृदय प्राप्त किया था । परन्तु मै भी नहीं । मै चित्रागदा हूँ । मै न देवी हूँ और न ही मै साधारण स्त्री हूँ । जिसकी पूजा कर तुम शिर चढ़ाओ मै वह भी नहीं । अपने पालित जनों में पीछे तुम अनादर से रखोगे । सङ्कट के राह में मुझे तुम सदा पास मे रखो । मुझे तुम तब जानोंगे जब अपनी दुरुह चिन्ता का अश दो, अपने कठिन व्रत की सहायता करने की आज्ञा दो और मुझे तुम सुख दुःख की साथिन करो ।

पृ० १८,—हे प्रिय अर्जुन ! आज मैं धन्य हूँ और मेरा भाग्य भी धन्य है ।

पृ० १९८—जब वस्तु विचार ने काम को ललकार कर मार दिया तो विवेक की सेना तभी जय जय पुकार उठी ।

उधर क्रोध में भर कर क्रोध ऐसे चला मानों अग्नि समूह बड़ा रूप धारण किए हो । भयानक विशाल हिंसा को साथ मे लिया । उसकी ज्वाला ही मानो विपुल हथियार थे । लपट की तरह से सीधा दौड़ कर झपटा और बड़ी धूम से कटक को आ घेरा रात का दिन हो गया, अन्धेरा छा गया । अपना पसारा हुआ हाथ नहीं सूझता था । अपना पराया कुछ नहीं दीख पड़ता था । डर के मारे जहाँ तहाँ कोई नहीं दीखता था । कितने ही क्रोध की अग्नि मे जल गए । सब व्याकुल हो कर कहते हैं कि क्या होना चाहता है ?

पृ० १९९—तब इधर क्षमा रूपी अगाध शीतल जल का सारस रूपी कोमल वचनों का प्रवाह क्रोध पर जा कर पड़ा । एक पल में बुझा कर उस का काला मुँह कर दिया । फिर बहा दिया, उस का खोज तक नहीं रहा ।

फिर लोभ ने विशाल रूप धारण करके महा विकराल तृष्णा को साथ ले, पर्वत की गुफा जैसा मुँह फैला, जल भरे तालाब जैसे पेट वाले, भयदायिनी लम्बी २ सर्प जैसी बांहों वाले ने मान रावण का भाई कुम्भकरण हो, सामने आकर हाथ फैलाए और सब को एक साथ लपेट लिया। उसे ऐसा समझ पड़ा मानों लोभ सब का काल बन गया है।

भक्ति ने कहा—कि यह अच्छा नही किया जो मोह को जीता हुआ जाने दिया। जब तक मोह के शरीर में प्राण हैं तब तक हमें चैन नहीं। यदि युद्ध में सरदार बच जाता है तो सेना इकट्ठी करना कठिन नहीं। थोड़े समय में सेना जोड़ कर शत्रु से युद्ध करता है।

विष्णु भक्ति ने पूछा—श्रद्धा! बोल, मोह की हार सुन कर मन का क्या हाल है।

पृ० २००—श्रद्धा बोली—ठीक है। मन की दशा का वर्णन नही किया जा सकता। प्रवृत्ति नामक उसकी एक अच्छी स्त्री है। मन का उससे बहुत प्रेम है। कामादि का मारा जाना कान से सुन प्रेम से उसने प्राण त्याग दिए इस बात के सुनने से मन को अधिक शोक है। शायद अब मन मर भी जाए।

इस से बढ़ कर और भला क्या होगा कि मन मर जाए। बिना परिश्रम के सहज में ही मरे तो सब काम बन जायेंगे। और मन भी बहुत दु:ख से छूट कर अपना स्वरूप लेगा। ब्रह्म में लीन हो कर सुख पाएगा जो हर प्रकार से अनुपम है।

पृ० २०२—मै ईश्वर के क्रोध से उत्पन्न हुआ हूँ, और भारत में आया हूं। सारे भारत को भस्मसात् कर दूं तो उत्तम हूँ नहीं तो नीच। मुझे सहज मत समझ लेना, बस एक राक्षस ही जान

लो। सब को कौड़ी २ का मुहताज करूंगा। इन के भूखे प्राणों को निकालूं तो सच्चा राजा हूं अन्यथा काल, महंगी और रोगों को लाऊगा। वे मौके वर्षा करूंगा और संसार में शोक छा दूंगा फूट, वैर और कलह को बुलाऊंगा और आलस्य को जबरदस्ती लाऊंगा उसे घर २ में फैला कर दुःखों की घटा छा दूंगा। काफिर (मुसलमान इस नाम से हिन्दुओं को पुकारते हैं), काला (अङ्गरेज भारतीयों को इस नाम से पुकारते हैं) और नीच कह कर पुकारूंगा, हाथ और पैर तोड़ दूंगा। इन्हे सन्तोष, खुशामद और कायरता भी साथ में दे दूगा। प्लेग को बुला लूंगा। अन्न मंहगा करके देश को उजाड़ दूंगा। सब पर टैक्स लगा दूंगा। मुझे धन्य है धन्य है।

पृ० २०३—हमारा नाम सत्यानास है, हम राजा के पास आए हैं। लाखों भेष धर कर इस देश को हमने चौपट किया है। हमने बहुत धर्म फैलाए हैं और छूआ-छूत का कर्म बढ़ाया है। हमने जमचन्द हो कर भारत का द्वार खोल दिया था। हलाकू, चंगेज और तैमूर हमारे छोटे २ शूरवीर हैं। दूरानी, अहमशाह अब्दाली और नादिरशाह मेरी फौज के मामूली सिपाही हैं। इस में कल बल छल तीनों हैं, इसीलिए किसी की कुछ नहीं चल सकती। हम खूब शराब पिलावेंगे और आज सब को खराब करेंगे।

पृ० २०४—बहुत तरह के विधि-वाक्य रच कर पुराणों में घुसा दिए, शैव, शाक्त और वैष्णव आदि अनेक मत प्रकट कर चला दिए हैं। अनेक जातियाँ कर दी हैं, ऊच नीच का भेदभाव प्रकट कर दिया है। खान पान का सम्बन्ध सब से निषेध करके छुड़ा दिया है। जन्म पत्र विधि मिलने से अब व्याह नहीं होने देते। बचपन में विवाह करके बल प्रीति का नाश कर दिया कुलीनों के बहुत २ विवाह करके बल वीर्य मार दिया। विधवा

विवाह का निषेध करके व्यभिचार फैला दिया। विलायत जाना रोक कर भारतीयों को कुए के मैंडक बना दिया। दूसरों की सगति छुड़ा प्रचार कम कर दिया। बहुत देवी, देवता, भूत, प्रेत आदि का पूजन करवा कर सब को ईश्वर से विमुख कर दिया।

पृ० २०५—छूत छात की भावना रच भोजन प्रीति छुड़ा कर सब को नष्ट भ्रष्ट कर डाला है।

वेदान्त का मत रच सब को ब्रह्म बना, हाथ पैर तोड़ सब हिन्दुओं को पुरुषोत्तम बना डाला है।

पृ० २१२—अरे भाई! जागो, रात को सोते २ सारी आयु खो दी। रात का क्या कहना दिन भी चले गए, अब तो काल रात चली आ रही है। तुम्हें हित अनहित कुछ नहीं दीख पड़ता शत्रु के वश पड़े हो। अपने उद्धार का मार्ग नही सूझा, पछता २ कर शिर धुन रहे हो। फिर पछताने से कुछ नहीं होगा, मुँह फाड़े रह जाओगे।

पृ० २२३—जवानी तेरी चंचल है। जो रस तू लाया इस में बैठ घूंट भर के पीलूं। रे छली! मेरे प्याले में तू कब मद बन कर समाया और जीवन रूपी वशी के सूराखों में स्वर बन कर लहराया है। ओ पल भर रुकने वाले यात्री! कह तू कहाँ से आया है।

पृ० २२७—अस्ताचल पर सन्ध्या युवती की घुँघराली अलक खुली हैं। लो मानसिक मदिरा की निराली धारा बहने लगी। पहाड़ियों ने अपनी झील की रत्न वाली प्याली भर ली है। बेलों से लपटी हुई वृक्षों की डाली झुक कर चूमने चली है। प्रेम के रोष से भरा माननियों का कोमल हृदय पिघलने लगा। वे हसती हुई प्रेम भरी अमृत की लहर उठाने वाली हैं प्यार भरे जोड़े कुञ्जों की झुरमुरों से विहार करने निकले हैं इस मीठी अन्धेरी

में अब तक क्या इन की प्याली खाली है। फूलों ने सुगन्धी और पुष्परस मिला दिया है। प्यालियाँ भर उठी हैं। अनुराग भरे ओठों से कामिनियों ने उन्हे लगा लिया है। पृथ्वी मद से मस्त हो गई है। आकाश भी उसे झुकने लगा। सब अपने सुख मे झुम रहे हैं तूने बाधा क्यों डाली है ?

पृ० २४२—मै जब अपने ध्येय से सफल हो जाऊगा, तब आऊगा और अपनी प्रेम सेवा से ससार का दुःख मिटा दूंगा। सब मनुष्यों का बताऊगा कि सत्य यह है। मनुष्य की आशा मनुष्य से ही पूरी होती है।

पृ० २४५—तुम चांद जैसे मुख वाली हो, तुम कुन्द की कली जैसे दांतों वाली हो। तुम चन्द्रमा की प्यारी हो प्रियतम की परछाई हो। आकाश की नये रङ्ग वाली सीपी से तुम मोतियों की कान्ति की तरह उमड कर आई हो। तेरे मन मे न खिले हुए स्वप्नों का युग है। तेरे मन की छवि शरीर में छन कर छाई हुई है। तुम ससार के लिये श्री, सुख और सौन्दर्य की कलियों चुन २ कर अञ्चल भर लाई हो।

पृ० २४६—सीधे, चुटकीले, स्वच्छ बहुत से हिमशिशु प्रसन्न हैं। पत्ते २ पर झलमला कर मोती की भांति मुस्करा रहे हैं। डोडी कली २ पर हसी है डोकी २ पर विलास है। तिनका २ चञ्चल हो नाच रहा है साक्षात् पृथ्वी पर तारे छाये हुए है। हे पटरानी। आज तेरा स्वागत है। श्री और सुख के साज सजे हुए है। सुन्दर चञ्चल छवि वाली ओस का तेरा ताज है। मणियों की कान्ति इस पर डोल जाती है।

पृ० २५६—क्या प्यार की यह पहचान है ? चान्दनी के नवस्पर्श को पाकर नादान पत्ते चमक उठते हैं। वायु के छूते ही

पानी की लहरें नाचने लगती हैं। सूर्य के पैरों की कोमल लाहट सुन कर चिड़ियों का राग फूट पड़ता है। हे प्रिय तुम्हारी केवल याद ही मेरे सोये प्राणों को जगा देती है।

प्र० २६८—नकारे पर डङ्का बज रहा है, तू अपने हथियारों को सम्भाल! तुरही शूरवीरों को बुला रहा है, तू भी उठ आर कोई ढङ्ग निकाल।

समाप्तमिदं पुस्तकम्
